क्या पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी ज़रूरी नहीं?

मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रह्म करनेवाला है।'

दो शब्द

यह किताब अस्ल में मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (1903-1979 ई॰) के दो लेखों ('इत्तिबाअ् व इताअते-रसूल' और 'रिसालत और उसके अह्काम') का हिन्दी तर्जमा है। ये लेख मौलाना के लेखों के उर्दू संग्रह तफ़हीमात, हिस्सा-1 में प्रकाशित हुए हैं। ये लेख उन्होंने सन् 1934 और 1935 ई॰ में उर्दू पत्रिका 'तर्जुमानुल-क़ुरआन' में कुछ लोगों के सवाल के जवाब में लिखे थे।

सवाल पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी करने के बारे में था। मौलाना मौदूदी (रह॰) ने बड़े ही प्रभावकारी ढंग से दलीलों के साथ उनका जवाब दिया। आज भी इस तरह के सवाल बहुत-से लोगों के दिमाग़ों में आते हैं या दूसरे लोगों के ज़रिए पैदा किए जाते हैं और लोग उन सवालों की ज़ाहिरी शक्ल को देखकर मुतास्सिर हो जाते हैं कि अगर कोई आदमी ख़ुदा को एक मानता है और कुछ अच्छे काम भी करता है तो क्या उसके लिए पैग़म्बर पर ईमान लाना और उसकी फ़रमाँबरदारी ज़रूरी है? और अगर ज़रूरी है तो क्यों? इसलिए ज़रूरत महसूस की गई कि ऐसे क़ीमती लेखों का हिन्दी में तर्जमा प्रकाशित किया जाए।

इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (रजि॰) इस्लाम के बारे में हिन्दी ज़बान में किताबें तैयार करने के मुबारक काम में लगा हुआ है। ख़ुदा का शुक्र है कि ट्रस्ट ने इस अहम काम को मुकम्मल किया।

हमें उम्मीद है कि यह किताब फ़ायदेमन्द साबित होगी।

—नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

विषय सूची

(1)

पैग़म्बर की पैरवी और फ़रमाँबरदारी

[यह लेख मौलाना हाफ़िज़ मुहम्मद असलम जैराजपुरी की किताब 'तालीमाते-क़ुरआन' पर तनक़ीद (आलोचना) के सिलसिले में लिखा गया था।]

'तालीमाते-क़ुरआन' (क़ुरआन की शिक्षाएँ) के लेखक ने रिसालत और उसके अह्काम (आदेशों) की व्याख्या करते हुए जिन ख़यालात का इज़हार किया है वे मेरे नज़दीक रिसालत के उस तसव्वुर से मेल नहीं रखते जो क़ुरआन पेश करता है। किताब के पेज 59 पर विद्वान लेखक ने लिखा है–

उसूली क़ानून सिर्फ़ अल्लाह की किताब है।

"लोगो! जो कुछ तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर उतारा गया है उसकी पैरवी करो और अपने रब को छोड़कर दूसरे सरपरस्तों की पैरवी न करो।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-3)

और यह कि–

"अपने मामले आपस के मशूवरे से चलाते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-38)

यहाँ लेखक ने बीच में से पैग़म्बर के बताए हुए तरीक़े को साफ़ उड़ा दिया है। उनकी तजवीज़ (प्रस्ताव) यह है कि क़ुरआन मजीद से उसूल लेकर मुसलमान आपसी मशूवरे से तफ़सीली क़ानून बना लिया करें। लेकिन इन दोनों कड़ियों के बीच सिलसिले की एक और कड़ी भी थी जिसको ख़ुद अल्लाह ने उस ज़ंजीर में जोड़ा था। वह कड़ी यह है–

"ऐ नबी! लोगों से कह दो कि अगर तुम सचमुच अल्लाह से मुहब्बत रखते हो तो मेरी पैरवी इख़्तियार करो, अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-31)

इसमें कोई शक नहीं कि उसूली क़ानून क़ुरआन ही है, मगर यह क़ानून हमारे पास बिना किसी वास्ते (माध्यम) के नहीं भेजा गया है, बल्कि .ख़ुदा के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के वास्ते (माध्यम) से भेजा गया है। और पैग़म्बर (सल्ल०) को बीच का वास्ता इसलिए बनाया गया है कि वे उसूली क़ानून अपनी और अपनी उम्मत (समुदाय) की अमली ज़िन्दगी में लागू करके एक नमूना पेश कर दें, और .ख़ुदा की दी हुई बसीरत (दूरदर्शिता) से हमारे लिए वे तरीक़े तय कर दें जिनके मुताबिक़ हमें उस उसूली क़ानून को अपनी इज्तिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी और इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) बरताव में लागू करना चाहिए। फिर तो क़ुरआन के मुताबिक़ सही ज़ाबिता यह है कि पहले .ख़ुदा का भेजा हुआ क़ानून, फिर .ख़ुदा के पैग़म्बर का बताया हुआ तरीक़ा, फिर उन दोनों की रौशनी में हमारे उलिल-अम्र (हुक्मराँ और उलमा) का इज्तिहाद (नए मसाइल को क़ुरआन, सुन्नत और सहाबा व ताबिईन की तालीमात की रौशनी में हल करना)।

> "इताअत करो अल्लाह की और इताअत करो पैग़म्बर की और उन लोगों की जो तुममें से हुक्म देने का इख़्तियार रखते हों। फिर अगर तुम्हारे बीच किसी मामले में झगड़ा हो जाए तो उसे अल्लाह और पैग़म्बर की तरफ़ फेर दो।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-59)

'फेर दो अल्लाह और पैग़म्बर की तरफ़' का जुमला (वाक्य) ख़ास तौर पर ग़ौर करने के लायक़ है। शरीअत के मामलों में जब मुसलमानों के बीच झगड़ा और मतभेद पैदा हो तो हुक्म है कि ख़ुदा और पैग़म्बर की तरफ़ पलटा जाए। 'फेर दो' की जगह अगर सिर्फ़ 'क़ुरआन मजीद' होता तो सिर्फ़ 'फेर दो अल्लाह की तरफ़' कहना काफ़ी था। लेकिन उसके साथ 'और रसूल की तरफ़' भी कहा गया है जिसमें साफ़-साफ़ इशारा है कि क़ुरआन के बाद रसूल (पैग़म्बर) का तरीक़ा तुम्हारे लिए वह तरीक़ा है जिसकी तरफ़ तुम्हें पलटना है।

इसके बाद लेखक ने पेज 128 पर लिखा है–

> "पैग़म्बर पर तो सिर्फ़ पैग़ाम पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी है।"
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-99)

"और हमपर साफ़-साफ़ पैग़ाम पहुँचा देने के सिवा कोई ज़िम्मेदारी नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-36 या-सीन, आयत-17)

आगे चलकर पेज 155 पर लिखते हैं—

और पैग़म्बरी के मंसब (पद) की हैसियत से पैग़म्बर का फ़र्ज़ सिर्फ़ ख़ुदा के पैग़ाम को पहुँचा देने-भर है और बस।

"तुमपर तो सिर्फ़ बात पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी है।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-48)

"लेकिन अगर तुम इताअत से मुँह मोड़ते हो तो हमारे रसूल पर साफ़-साफ़ हक़ पहुँचा देने के सिवा कोई ज़िम्मेदारी नहीं।"

(क़ुरआन, सूरा-64 तग़ाबुन, आयत-12)

"बहरहाल तुम्हारा काम सिर्फ़ पैग़ाम पहुँचा देना है और हिसाब लेना हमारा काम है।" (क़ुरआन, सूरा-13 रअ्द, आयत-40)

यहाँ लेखक ने सियाक़ो-सबाक़ (सन्दर्भ और परिप्रेक्ष्य) और कलाम के मतलब को नज़रन्दाज़ करके पैग़म्बर की हैसियत को इस अन्दाज़ से बयान किया है कि मानो वह सिर्फ़ एक पत्र-वाहक या नऊज़ुबिल्लाह (ख़ुदा की पनाह!) डाकिया है। लेकिन अगर वे इन जुमलों (वाक्यों) को उन इबारतों के परिप्रेक्ष्य से मिलाकर पढ़ते जिनमें ये आए हैं तो उन्हें ख़ुद मालूम हो जाता कि अस्ल में यह जो कुछ कहा गया है, यह नबी पर ईमान लानेवालों से नहीं बल्कि उनका इनकार करनेवालों से ताल्लुक़ रखता है। जो लोग पैग़म्बर की तालीम को क़बूल करने के लिए तैयार न थे और बार-बार पैग़म्बर को झुठलाते थे, उनसे कहा गया है कि रसूल का काम तुम तक हमारा पैग़ाम पहुँचा देना है सो उसने पहुँचा दिया। अब तुम यह नहीं कह सकते कि हमारे पास कोई रहनुमा नहीं भेजा गया—

"ताकि तुम यह न कह सको कि हमारे पास कोई ख़ुशख़बरी देनेवाला और डरानेवाला नहीं आया।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-19)

अब ख़ुदा पर तुम्हारी कोई हुज्जत नहीं रही—

"ताकि उनको भेज देने के बाद लोगों के पास अल्लाह के मुक़ाबले में कोई हुज्जत न रहे।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-165)

अब तुम न मानोगे तो अपना ही कुछ बिगाड़ोगे—

"मगर इसके बाद जिसने तुममें से (हक़ के) इनकार का रवैया अपनाया तो हक़ीक़त में वह सीधे रास्ते से भटक गया।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-12)

इसी सिलसिले में अल्लाह के नबी (सल्ल०) से भी कहा गया कि तुम हक़ के इन इनकारियों की नाफ़रमानी और विमुखता से दुखी क्यों होते हो? तुम इनपर दारोग़ा नहीं बनाए गए हो। तुम्हारे ज़िम्मे जो काम दिया गया है वह सिर्फ़ इतना है कि उनके सामने सीधा रास्ता पेश कर दो, सो वह तुमने पेश कर दिया। अब रही यह बात कि वे इस रास्ते पर आते हैं या नहीं, तो इस बारे में कोई ज़िम्मेदारी तुमपर नहीं। तुम्हारा यह काम नहीं कि उनको खींचकर इस रास्ते की तरफ़ लाओ। अगर वे तुम्हारी तालीम और तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) से मुँह मोड़कर टेढ़े रास्तों पर चलते हैं तो उनके इस काम की कोई पूछ-गछ तुमसे नहीं होगी।

"अब अगर ये लोग मुँह मोड़ते हैं तो (ऐ नबी!) हमने तुमको इनपर निगराँ बनाकर तो नहीं भेजा है, तुमपर तो सिर्फ़ बात पहुँचा देने की ज़िम्मेदारी है।" (क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-48)

"अच्छा तो (ऐ नबी!) नसीहत किए जाओ, तुम बस नसीहत ही करनेवाले हो, कुछ उनपर जब्र करनेवाले नहीं हो।"

(क़ुरआन, सूरा-88 ग़ाशिया, आयतें-21,22)

यह सब कुछ इनकारियों के मुक़ाबले में है। रहे वे लोग जो इस्लाम क़बूल कर लें और मुस्लिम उम्मत (समुदाय) में दाख़िल हो जाएँ, तो उनके लिए पैग़म्बर (सल्ल०) की हैसियत सिर्फ़ पैग़ाम देनेवाले की नहीं है, बल्कि पैग़म्बर उनके लिए मुअल्लिम और मुरब्बी (शिक्षक-प्रशिक्षक) भी है, इस्लामी ज़िन्दगी का नमूना भी है, और ऐसा अमीर (रहनुमा) भी है जिसकी इताअत हर

ज़माने में बेचूँ-चरा और बेझिझक की जानी चाहिए। मुअल्लिम की हैसियत से पैग़म्बर का मक़ाम यह है कि ख़ुदा के पैग़ाम की तालीमात और उसके क़ानूनों की तशरीह व तौज़ीह (व्याख्या) करे–

"उनको किताब और हिक्मत (तत्त्वदर्शिता) की तालीम दे।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-129)

मुरब्बी होने की हैसियत से उसका काम यह है कि क़ुरआनी तालीमात और क़ानूनों के मुताबिक़ मुसलमानों की तरबियत करे और उनकी ज़िन्दगियाँ उसी साँचे में ढाले और उनकी ज़िन्दगियाँ सँवारे। (सूरा-2 बक़रा, आयत-129) नमूना होने की हैसियत से उसका काम यह है कि ख़ुद क़ुरआनी तालीमात का अमली नमूना बनकर दिखाए, ताकि उसकी ज़िन्दगी उस ज़िन्दगी की ठीक-ठीक तस्वीर हो जो अल्लाह की किताब के मक़सद के मुताबिक़ एक मुसलमान की ज़िन्दगी होनी चाहिए और उसकी हर कथनी और हर करनी को देखकर मालूम हो जाए कि ज़बान को इस तरह इस्तेमाल करना और अपनी क़ुव्वतों से यूँ काम लेना, और दुनिया की ज़िन्दगी में ऐसा बरताव रखना अल्लाह की किताब के मक़सद के मुताबिक़ है, और जो कुछ उसके ख़िलाफ़ है वह किताब के मंशा के ख़िलाफ़ है।

"हक़ीक़त में तुम लोगों के लिए अल्लाह के पैग़म्बर में एक बेहतरीन नमूना है।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-21)

"वह अपने मन की इच्छा से नहीं बोलता, यह तो एक वह्य (प्रकाशना) है जो उसपर उतारी जाती है।"

(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयतें-3,4)

इसके साथ ही पैग़म्बर की हैसियत मुसलमानों के अमीर (मार्गदर्शक) की भी है। ऐसा अमीर नहीं जिससे झगड़ा किया जाए, बल्कि ऐसा अमीर जिसके हुक्म को बेचूँ-चरा मानना वैसा ही फ़र्ज़ है जैसा क़ुरआन मजीद की आयतों को मानना फ़र्ज़ है।

"फिर अगर तुम्हारे बीच किसी मामले में झगड़ा हो जाए तो उसे अल्लाह और उसके पैग़म्बर की तरफ़ फेर दो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-59)

"जिसने पैग़म्बर की इताअत (फ़रमाँबरदारी) की, उसने अस्ल में ख़ुदा की इताअत की।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-80)

ऐसा अमीर (रहनुमा) नहीं जो सिर्फ़ अपनी ज़िन्दगी ही में अमीर होता है, बल्कि ऐसा अमीर (रहनुमा) जो क़ियामत तक के लिए मुस्लिम उम्मत का अमीर है, जिसके हुक्म की तरफ़ मुसलमानों को हर ज़माने और हर हाल में पलटना है। इसलिए कि क़ुरआन मजीद की जितनी आयतें ऊपर पेश की गई हैं उनमें से कोई भी ज़माने के साथ बँधी हुई नहीं है, न मनसूख़ (निरस्त) है।

लेखक ने पैग़म्बरों के मंसब (पद) के उन मर्तबों को समझने में तीन बहुत बड़ी ग़लतियाँ की हैं—

1. पहली ग़लती यह है कि उन्होंने कुछ आयतों का ग़लत मफ़हूम (अर्थ) लेकर पैग़म्बर का काम सिर्फ़ तबलीग़ (यानी बात पहुँचानेवाले) तक महदूद कर दिया। हालाँकि पैग़म्बर की मुबल्लिग़ाना हैसियत सिर्फ़ उस वक़्त तक है जब तक कि लोग इस्लाम के दायरें में दाख़िल न हों, और सिर्फ़ उन लोगों के लिए है जिन्होंने रसूल की तालीम को अभी क़बूल न किया हो। रहे वे लोग जो इस्लाम क़बूल करके मुस्लिम समुदाय में दाख़िल हो जाएँ, तो उनके लिए पैग़म्बर की हैसियत सिर्फ़ पहुँचा देनेवाले की नहीं है बल्कि वह उनका लीडर है, फ़रमाँरवा है, क़ानून बनानेवाला है, मुअल्लिम है, मुरब्बी है और ऐसा शख़्स है जिसकी पैरवी करना निहायत ही ज़रूरी है।

2. लेखक की दूसरी ग़लती इसी पहली ग़लती के नतीजे में पैदा हुई है, जब उन्होंने पैग़म्बर को मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों, सबके लिए सिर्फ़ मुबल्लिग़ (प्रचारक) ठहरा दिया तो उनको यह परेशानी पेश आई कि क़ुरआन में जो पैग़म्बर को मुसलमानों के लिए मुअल्लिम, मुरब्बी और नमूना क़रार दिया गया है उसका क्या मतलब तय किया जाए। आख़िरकार उन्होंने पैग़म्बर की इन सब हैसियतों को तबलीग़ के अन्दर शामिल कर दिया, और इस नतीजे पर पहुँच गए कि मुबल्लिग़ाना (प्रचारक-प्रसारक की) हैसियत के अलावा नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी के और जितने पहलू हैं वे सब आप

(सल्ल॰) की निजी (व्यक्तिगत) हैसियत से ताल्लुक़ रखते हैं। इसी लिए वे लिखते हैं–

"वह अपने मन की इच्छा से नहीं बोलता, यह तो एक वह्य (प्रकाशना) है जो उसपर अवतरित की जाती है।"

(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयतें-4,3)

इस आयत का यह मतलब और मफ़हूम क़रार देना कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) जो कुछ बात करते थे वह सब-की-सब वह्य (प्रकाशना) थी सही नहीं है। क्योंकि दावा क़ुरआन के वह्य होने का था जिसका हक़ के इनकारी इनकार करते थे। इसके बारे में कहा गया कि जो कुछ वे बोलते हैं वह्य (प्रकाशना) है। घर या पाक बीवियों या बाहर दूसरे लोगों से जो बातचीत करते थे उसके बारे में न वह्य होने का दावा था न इनकारियों को कोई बहस थी।

इस तक़रीर को जब हम लेखक की उन इबारतों (पंक्तियों) के साथ मिलाकर पढ़ते हैं जिनमें कहा गया है कि "पैग़म्बर का काम सिर्फ़ ख़ुदा के पैग़ाम को पहुँचा देना है और बस" और "पैग़म्बर की इताअत का मतलब यह हुआ कि अल्लाह का पैग़ाम जो वह लाया है उसपर अमल किया जाए" और यह कि "हमारे पैग़म्बर सिर्फ़ अल्लाह की किताब यानी क़ुरआन के मुबल्लिग़ (पहुँचानेवाले) थे, तो इससे लेखक का मुद्दआ और मक़सद यह मालूम होता है कि अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल॰) पैग़म्बर होने की हैसियत से और अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल॰) इनसान होने की हैसियत के बीच फ़र्क़ कर दें। पैग़म्बर होने की हैसियत से नबी (सल्ल॰) क़ुरआन की जो तालीम और शिक्षा दें और क़ुरआन के मुताबिक़ जो हुक्म दें, वे तो लेखक के नज़दीक सुनने और इताअत करने का हक़ रखते हैं, मगर इनसान होने की हैसियत से आप (सल्ल॰) के क़ौल और फ़ेल (कथन और कर्म) वैसे ही हैं जैसे एक इनसान के होते हैं। इनका ख़ुदा की तरफ़ से होना, और ज़लालत और गुमराही से पाक होना लेखक के नज़दीक सही और दुरुस्त नहीं है, और न लेखक उनके अन्दर मुस्लिम उम्मत के लिए कोई इताअत

के क़ाबिल नमूना पाते हैं।

लेकिन यह फ़र्क़ जो उन्होंने अब्दुल्लाह के बेटे मुहम्मद (सल्ल॰) की इनसानी हैसियत और अल्लाह के रसूल मुहम्मद (सल्ल॰) की मुबल्लिग़ की हैसियत के बीच किया है, क़ुरआन मजीद से हरगिज़ साबित नहीं। क़ुरआन मजीद में नबी (सल्ल॰) की एक ही हैसियत बयान की गई है और वह पैग़म्बर और नबी होने की हैसियत है। जिस वक़्त अल्लाह ने आप (सल्ल॰) को पैग़म्बरी का मंसब अता किया उस वक़्त से लेकर जिस्मानी ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक आप (सल्ल॰) हर पल और हर हाल में ख़ुदा के पैग़म्बर थे। आप (सल्ल॰) का हर काम और हर बोल ख़ुदा के पैग़म्बर की हैसियत से था। इसी हैसियत में आप (सल्ल॰) मुबल्लिग़ और मुअल्लिम भी थे, मुरब्बी और मुज़क्की (तरबियत और तज़किया करनेवाले) भी थे, जज और हाकिम भी थे, इमाम और अमीर (रहनुमा) भी थे, यहाँ तक कि आप (सल्ल॰) की निजी, ख़ानदानी और शहरी ज़िन्दगी के सारे मामले भी इसी हैसियत के तहत आ गए थे। और इन सारी हैसियतों में आप (सल्ल॰) की पाक ज़िन्दगी एक कामिल इनसान, पाकबाज़ मुस्लिम, सच्चे मोमिन की ज़िन्दगी का ऐसा नमूना थी जिसको अल्लाह ने हर उस आदमी के लिए इताअत के क़ाबिल बेहतरीन नमूना क़रार दिया था जो अल्लाह की ख़ुशनूदी और आख़िरत की कामयाबी हासिल करना चाहता हो—

> "हक़ीक़त में तुम लोगों के लिए अल्लाह के पैग़म्बर में एक बेहतरीन नमूना है, हर उस आदमी के लिए जो अल्लाह और आख़िरत के दिन का उम्मीदवार हो।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-21)

क़ुरआन मजीद में हल्के-से-हल्का इशारा भी ऐसा नहीं मिलता जिसकी बुनियाद पर नबी (सल्ल॰) की पैग़म्बरीवाली हैसियत और इनसानी हैसियत और अमीर (रहनुमा) होने की हैसियत में कोई फ़र्क़ किया गया हो। और यह फ़र्क़ कैसे किया जा सकता है? जब आप (सल्ल॰) ख़ुदा के पैग़म्बर थे तो लाज़िम था कि आप (सल्ल॰) की पूरी ज़िन्दगी ख़ुदा की शरीअत के मातहत हो, और उस शरीअत की नुमाइन्दा (प्रतिनिधि) हो, और आप (सल्ल॰) से कोई ऐसा काम और कोई ऐसी हरकत न हो जाए जो ख़ुदा की रिज़ा और

उसके मंशा के ख़िलाफ़ हो।

इसी बात की तरफ़ सूरा-53 नज्म की शुरुआती आयतों में इशारा किया गया है—

"तुम्हारा साथी न भटका है, न बहका है।"

(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयत-2)

तुम्हारा साथी यानी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) न बदराह हुआ, न गुमराह हुआ।

"वह अपने मन की इच्छा से नहीं बोलता। यह तो एक वह्य है जो उसपर उतारी जाती है।" (क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयतें-3,4)

उसकी बात कुछ नहीं है मगर वह्य जो उसपर उतारी जाती है।

"उसे ज़बरदस्त ताक़तवाले ने तालीम दी है।"

(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयत-5)

उसको ऐसे उस्ताद ने तालीम दी है जिसकी क़ुव्वतें बड़ी ज़बरदस्त हैं। लेखक साहब कहते हैं कि इन आयतों में सिर्फ़ क़ुरआन के वह्य होने का दावा किया गया है जिसका हक़ के इनकारी इनकार करते थे। लेकिन मुझे इन आयतों में कहीं कोई हल्का-सा इशारा भी क़ुरआन की तरफ़ नज़र नहीं आता।

"यह तो एक वह्य है जो उसपर उतारी जाती है।"

(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयत-4)

इस आयत में अरबी शब्द 'हु-व' की ज़मीर (सर्वनाम) पैग़म्बर के बोलने की तरफ़ फिरती है, जिसका ज़िक्र इस आयत में किया गया है—

"वह अपने नफ़्स (मन) की ख़ाहिश से नहीं बोलता।"

(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयत-3)

इन आयतों में कोई चीज़ ऐसी नहीं है जिसकी बुनियाद पर पैग़म्बर के 'बोलने' को सिर्फ़ क़ुरआन के साथ ख़ास किया जा सकता हो। हर वह बात जिसे 'पैग़म्बर का बोलना' कहा जा सकता है, बयान की गई आयतों की

बुनियाद पर वह्य होगी और मन की इच्छाओं से पाक-साफ़ होगी। यह व्याख्या क़ुरआन में इसलिए की गई है कि पैग़म्बर को जिन लोगों के पास भेजा गया है उनको पैग़म्बर के बदराही, गुमराही और मन की इच्छाओं से महफ़ूज़ होने का पूरा-पूरा यक़ीन और भरोसा हो जाए और वे जान लें कि पैग़म्बर की हर बात ख़ुदा की तरफ़ से है। वरना अगर किसी एक बात में यह शक-शुब्हा हो जाए कि वह मन की इच्छा पर आधारित है और ख़ुदा की तरफ़ से नहीं है तो पैग़म्बर की पैग़म्बरी पर से भरोसा उठ जाए। अरब के मुशरिक इसी चीज़ के इनकारी थे। वे समझते थे कि—अल्लाह की पनाह! पैग़म्बर को जुनून (पागलपन) है, या कोई आदमी उसको पढ़ाता है, या वह अपने दिल से बातें बनाकर कहता है। अल्लाह ने ये आयतें उतारकर उस ग़लत ख़याल को रद्द कर दिया है और साफ़-साफ़ शब्दों में कह दिया है कि न तुम्हारा साथी मुहम्मद (सल्ल॰) भटका हुआ है, न गुमराह है, न मन और इच्छा की बुनियाद पर कुछ कहता है। उसकी ज़बान से जो कुछ निकलता है हक़ (सत्य) निकलता है जो ख़ास हमारी तरफ़ से है और उसको कोई इनसान, जिन्न या शैतान नहीं पढ़ाता बल्कि वह मुअल्लिम (शिक्षक) सबक़ देता है जो ज़बरदस्त क़ुव्वतवाला है। यह बात ख़ुद पैग़म्बर (सल्ल॰) ने भी अपनी मुबारक ज़बान की तरफ़ इशारा करके कही है—

> "उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है! इससे जो कुछ निकलता है हक़ ही निकलता है।"
>
> (हदीस : अबू-दाऊद-3646, अहमद-6802, दारमी-501)

बड़े दुख की बात है कि 'तालीमाते-क़ुरआन' के लेखक को इस हक़ीक़त से इनकार है। वे कहते हैं कि "पैग़म्बर (सल्ल॰) अपने घर में पाक बीवियों से या बाहर दूसरे लोगों से जो बातचीत करते थे उसके मुताल्लिक़ न वह्य होने का दावा था न कुफ़्फ़ार (इनकारियों) को कोई बहस थी।" मैं कहता हूँ कि नबी (सल्ल॰) जिस वक़्त जिस हालत में जो कुछ भी करते थे पैग़म्बर की हैसियत से करते थे। सब कुछ ज़लालत, गुमराही और मन की इच्छाओं से पाक था। अल्लाह ने जो फ़ितरते-सलीमा (निर्मल स्वभाव) आप (सल्ल॰) को दिया था, और ख़ुदातर्सी, परहेज़गारी और पाकीज़गी की जो हदें आप

(सल्ल॰) को बताई थीं, आप (सल्ल॰) की सारी कथनी और करनी उन्हीं हदों पर पूरे उतरती थीं। उनके अन्दर सारी दुनिया के इनसानों के लिए एक पैरवी के क़ाबिल नमूना था, और हम उन्हीं से यह मालूम कर सकते हैं कि क्या चीज़ जाइज़ है और क्या नाजाइज़, कौन-सी चीज़ हराम है और कौन-सी हलाल, कौन-सी बातें अल्लाह की रिज़ा के मुताबिक़ हैं और कौन-सी उसके ख़िलाफ़ हैं, किन मामलों में हमको राय और इज्तिहाद की आज़ादी हासिल है और किन मामलों में नहीं है, किस तरह हम हुक्म की इताअत करें, किस तरह आपसी मशूवरों से मामलों को तय करें और क्या मानी हैं हमारे दीन (इस्लाम) में जमहूरियत (लोकतन्त्र) के।

3. लेखक की तीसरी बड़ी ग़लती यह है कि उन्होंने अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के अमीर (हाकिम) होने की हैसियत को पैग़म्बरी की हैसियत से अलग कर दिया है जिसका सुबूत क़ुरआन में नहीं है। वे लिखते हैं—

पैग़म्बर की हैसियत से इताअत करने और अमीर (हाकिम) होने की हैसियत से इताअत करने में दो बातों का फ़र्क़ है—

1. पैग़म्बर की हैसियत से आप (सल्ल॰) को किसी से मशूवरा लेने का हुक्म न था, बल्कि तबलीग़ का फ़र्ज़ (बात पहुँचा देने का काम) अल्लाह की तरफ़ से आप (सल्ल॰) के ज़िम्मे लाज़िम किया गया था—

> "ऐ पैग़म्बर! जो कुछ तुम्हारे रब की तरफ़ से तुमपर उतारा गया है, वह लोगों तक पहुँचा दो, अगर तुमने ऐसा न किया तो उसकी पैग़म्बरी का हक़ अदा न किया।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-67)

और अमीर (हाकिम) की हैसियत से लोगों से मशूवरा लेने का हुक्म दिया गया था—

> "और दीन के काम में उनको भी मशूवरे में शरीक रखो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

2. पैग़म्बर की हैसियत से आप (सल्ल॰) की इताअत क़ियामत तक फ़र्ज़ है क्योंकि क़ुरआन हमेशा के लिए है। लेकिन अमीर की हैसियत से आप

(सल्ल॰) की फ़रमाँबरदारी उन्हीं लोगों के लिए थी जो उस वक़्त आप (सल्ल॰) के सामने मौजूद थे–

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह और उसके पैग़म्बर की इताअत करो और हुक्म सुनने के बाद उससे नाफ़रमानी न करो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-20)

और इमारत (हुकूमत) की ज़िम्मेदारियाँ हमेशा हंगामी होंगी, क्योंकि ज़माने के साथ-साथ माहौल भी बदलता रहता है। ज़ाहिर है कि आज जो अमीर होगा वह बद्र और उहुद की लड़ाई की तरह से सिर्फ़ भाले और तलवार का ही जिहाद (लड़ाई) में इस्तेमाल न करेगा, बल्कि मौजूदा ज़माने के हथियार इस्तेमाल करेगा। अमीरों (हाकिमों) से इख़्तिलाफ़ और विवाद (लड़ाई-झगड़े) का हक़ हासिल है।

> "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! फ़रमाँबरदारी करो अल्लाह की और फ़रमाँबरदारी करो पैग़म्बर की और उन लोगों की जो तुममें से हुक्म देने का अधिकार रखते हों, फिर अगर तुम्हारे बीच किसी मामले में विवाद हो जाए तो उसे अल्लाह और उसके पैग़म्बर की तरफ़ फेर दो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-59)

यह सब कुछ क़ुरआन मजीद के मंशा को न समझने का नतीजा है। लेखक ने यह नहीं समझा कि ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) लोगों के बनाए हुए अमीर (हाकिम) नहीं थे, न ख़ुद बन गए थे, बल्कि ख़ुदा के मुक़र्रर (नियुक्त) किए हुए अमीर थे। आप (सल्ल॰) की इमारत (प्रशासन) आप (सल्ल॰) की पैग़म्बरी से अलग न थी। अस्ल में आप (सल्ल॰) ख़ुदा के पैग़म्बर होने की हैसियत से ही अमीर (हाकिम) थे। लेखक ने इसी सच्चाई को नहीं समझा इसलिए पैग़म्बर की इमारत की हैसियत को आम अमीरों (हाकिमों) की-सी हैसियत समझ लिया।

अपने इस ख़याल की ताईद (समर्थन) में लेखक ने क़ुरआन मजीद की जिन आयतों से दलीलें पेश की हैं उनको भी वे ठीक-ठीक नहीं समझे हैं। बेशक अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) को लोगों से मशवरा करने का हुक्म दिया

गया था, मगर वह इसलिए था कि आप अपनी उम्मत के लिए मुशावरत (परस्पर परामर्श करने) का नमूना पेश करें और ख़ुद अपने अमल से जमहूरियत (Democracy) के सही उसूल की तरफ़ रहनुमाई करें। इससे यह नतीजा निकालना ठीक नहीं है कि पैग़म्बर (सल्ल॰) की हैसियत दूसरे हाकिमों की-सी है। दूसरे हामिकों के लिए तो यह क़ानून मुक़र्रर किया गया है कि वे मश्वरे से काम करें–

"अपने मामले आपस के मश्वरे से चलाते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-42 शूरा, आयत-38)

और यह कि अगर शूरा (आपसी मश्वरा करनेवालों) में झगड़ा पैदा हो जाए तो वे ख़ुदा और पैग़म्बर की तरफ़ पलटें–

"फिर अगर तुम्हारे बीच किसी मामले में झगड़ा हो जाए तो उसे अल्लाह और रसूल की तरफ़ फेर दो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-59)

लेकिन अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) को जहाँ मश्वरा लेने का हुक्म दिया गया है वहीं यह भी कह दिया गया है कि आप (सल्ल॰) किसी बात का पक्का इरादा कर लें तो ख़ुदा पर भरोसा करके अमल करने में लग जाएँ–

"फिर जब तुम किसी राय पर जम जाओ तो अल्लाह पर भरोसा करो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-159)

इससे साफ़ मालूम होता है कि नबी (सल्ल॰) मश्वरे के मुहताज न थे, बल्कि आप (सल्ल॰) को मश्वरा करने का हुक्म सिर्फ़ इसलिए दिया गया था कि आप (सल्ल॰) के मुबारक हाथों से एक सही जमहूरी (लोकतान्त्रिक) तरीक़े पर हुकूमत की बुनियाद पड़ जाए।

रही यह बात कि अमीर (हाकिम) की हैसियत से नबी (सल्ल॰) की फ़रमाँबरदारी सिर्फ़ आप (सल्ल॰) के ज़माने तक थी, तो यह भी ग़लत है और जिस आयत में दलील देकर साबित किया गया है उससे यह मतलब नहीं निकलता। लेखक ने "और तुम लोग हुक्म सुनने के बाद उससे मुँह न फेरो"। (क़ुरआन, सूरा-8, अनफ़ाल, आयत-20) से यह समझा है कि पैग़म्बर

की फ़रमाँबरदारी का हुक्म सिर्फ़ उन लोगों को दिया गया था जो उस वक़्त इस हुक्म को सुन रहे थे। लेकिन अगर वे सूरा-8 अनफ़ाल को शुरू से पढ़ते तो उनको मालूम हो जाता कि वहाँ मंशा ही कुछ और है। शुरू में कहा गया है–

"अल्लाह और उसके पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी करो अगर तुम मोमिन हो।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-1)

फिर उन लोगों को डाँटा गया है जो अल्लाह के पैग़म्बर के जिहाद की तरफ़ बुलाने पर कुढ़ते थे। फिर कहा गया है–

"यह इसलिए कि उन लोगों ने अल्लाह और उसके पैग़म्बर का मुक़ाबला किया, और जो अल्लाह और उसके पैग़म्बर का मुक़ाबला करे, अल्लाह उसके लिए बहुत ही सख़्त (अज़ाब देनेवाला) है।"
(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-13)

और जो कोई अल्लाह और उसके पैग़म्बर से झगड़ा करता है उसे मालूम हो जाए कि अल्लाह सख़्त अज़ाब देनेवाला है। इसके बाद यह कहा गया–

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह और उसके पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी करो और हुक्म सुनने के बाद उससे सरताबी (नाफ़रमानी) न करो।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-20)

इस आयत में और पिछली सभी आयतों में पैग़म्बर के साथ अल्लाह की फ़रमाँबरदारी का ज़िक्र बार-बार किया गया है जिससे यह याद दिलाना मक़सद है कि पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी ही अल्लाह की फ़रमाँबरदारी है। फिर हर जगह शब्द रसूल आया है। अमीर का शब्द किसी जगह इस्तेमाल नहीं किया गया, और न छोटे-से-छोटा इशारा ऐसा मौजूद है जिससे मालूम होता हो कि यहाँ 'अल्लाह के रसूल' से मुराद रसूल की ऐसी अमीराना हैसियत है जो रिसालत या पैग़म्बरी से मुख़्तलिफ़ हो। फिर रसूल के हुक्म से मुँह मोड़ने को मना किया गया है जिसपर सख़्त अज़ाब की धमकी ऊपर दी जा चुकी है। इसके बाद "और तुम लोग हुक्म सुनने के बाद नाफ़रमानी न करो" कहने का मंशा यह है कि तुम हमारे इन ताकीदी हुक्मों को सुनते हुए हमारे रसूल

की फ़रमाँबरदारी से कभी मुँह न मोड़ो। इस 'सुनने' के मुख़ातब (सम्बोधित) सिर्फ़ वही लोग नहीं हैं जो उस वक़्त मौजूद थे, बल्कि क़ियामत तक जो लोग ईमान के साथ क़ुरआन को सुनेंगे उन सबपर लाज़िम है कि मुहम्मद (सल्ल॰) का जो हुक्म उनके पास पहुँचे उसको तसलीम करते हुए उसके आगे सिर झुका दें।

और यह जो लेखक ने फ़रमाया है कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) की इमारत के हुक्म उसी तरह हंगामी हैं जिस तरह दूसरे अमीरों (हाकिमों) के हुआ करते हैं, क्योंकि आज हम जिहाद में बद्र और उहुद की तरह नेज़ा, भाला और तलवार से नहीं लड़ सकते, तो यह बहुत ही अजीब बात है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने अपने ज़माने में जिन हथियारों से काम लिया वे हथियार तो ज़रूर एक ख़ास माहौल से ताल्लुक़ रखते थे, लेकिन नबी (सल्ल॰) ने अपनी लड़ाइयों में जो अख़लाक़ी ज़ाबिते बरते थे और जिन ज़ाबितों को बरतने की हिदायत फ़रमाई थी वे किसी ज़माने के लिए ख़ास न थे, बल्कि उन्होंने मुसलमानों के लिए जंग का दाइमी (हमेशा रहनेवाला) क़ानून बना दिया है। शरीअत की निगाह से यह सवाल अहमियत नहीं रखता कि आप (सल्ल॰) तलवार इस्तेमाल करते हैं या बन्दूक़ या तोप, बल्कि अहमियत इस सवाल की है कि आप (सल्ल॰) अपने हथियार को किस मक़सद के लिए इस्तेमाल करते हैं और किस तरह उनसे ख़ून बहाने का काम लेते हैं। इस बाब (विषय) में जो मिसाल ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने अपनी जंगों में पेश फ़रमाई है वह हमेशा के लिए इस्लामी जिहाद की एक मुकम्मल मिसाल है और हक़ीक़ी हैसियत से नबी (सल्ल॰) क़ियामत तक के लिए हर मुसलमान फ़ौज के महान सेनापति हैं।

लेखक ने इमारत (हुकूमत) और रिसालत में एक फ़र्क़ और भी बयान किया है और वह यह है कि मुसलमानों को अपने अमीरों (हाकिमों) से इख़्तिलाफ़ करने और विरोध जताने का हक़ हासिल है। अब मैं उनसे पूछता हूँ कि अगर नबी (सल्ल॰) के अमीर होने की हैसियत वैसी ही है जैसी दूसरे अमीरों की है, तो क्या नबी (सल्ल॰) से भी किसी मुसलमान को विरोध जताने का हक़ हासिल था? जिस अमीर के मुक़ाबले में आवाज़ ऊँची करने

तक की इजाज़त न थी, और जिसके मुक़ाबले में सिर्फ़ ऊँची आवाज़ से बोलने पर सारी उम्र के नेक अमल बेकार हो जाने की धमकी दी गई थी (सूरा-49 हुजुरात, आयत-2) उस अमीर से मुख़ालफ़त करने का हक़ किसी मुसलमान को हो सकता है? अगर नहीं तो कहाँ उस अमीर की इमारत और कहाँ इन अमीरों की इमारत जिससे लड़ने-झगड़ने का हक़ मुसलमानों को दिया गया है।

लेखक ने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के इमारत की हैसियत को आम अमीरों (हाकिमों) के इमारत की हैसियत में कोई फ़र्क़ नहीं रखा है, यहाँ तक कि वे तमाम हुक्म जो रसूल की फ़रमाँबरदारी से मुताल्लिक़ हैं, अमीर के हुक्म की फ़रमाँबरदारी क़रार दे दिया है। वे अपनी किताब के पेज 157 के हाशिए में लिखते हैं–

'अल्लाह' और 'रसूल' के शब्द क़ुरआन में अकसर जहाँ साथ-साथ आए हैं उनसे मुराद इमारत है जिसका क़ानून अल्लाह की किताब है और जिसके नाफ़िज़ (लागू) करनेवाले अल्लाह के रसूल या उनके जानशीन (उनके बाद आनेवाले) हैं। मिसाल के तौर पर–

"ये अनफ़ाल (ग़नीमतें) तो अल्लाह और उसके रसूल के हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-1)

ग़नीमत के माल का हुक्म पैग़म्बरी के ज़माने तक सीमित न था बल्कि आगे आनेवाले ज़माने के लिए भी है जिसका हुक्म मानना ख़िलाफ़त का कर्तव्य है।

फिर "अगर तुम्हारे दरमियान किसी मामले में झगड़ा हो जाए तो उसे अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ फेर दो।" (सूरा-4 निसा, आयत-59) के बारे में पेज 158 पर हाशिया (फुटनोट) लिखते हैं–

"आख़िरी इख़्तियार अल्लाह और रसूल यानी इमारत है इसलिए अल्लाह के रसूल का जो मंसब अमीर की हैसियत से है वही उनके ख़लीफ़ाओं का भी होगा।"

यह हक़ से खुली ख़िलाफ़वर्ज़ी है। क़ुरआन मजीद में ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी, रसूल की फ़रमाँबरदारी और अमीर की फ़रमाँबरदारी के तीन

दर्जे बयान किए गए हैं। ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी से मुराद क़ुरआन मजीद के हुक्मों की पैरवी है, रसूल की फ़रमाँबरदारी से मुराद मुहम्मद (सल्ल॰) के कथन और अमल की पैरवी है, और अमीर की फ़रमाँबरदारी से मुराद मुसलमानों के अमीरों, हाकिमों और आलिमों की पैरवी है। पहले दोनों दर्जों के ताल्लुक़ से क़ुरआन में एक जगह नहीं बीसियों जगह इस बात की तफ़सील पेश की गई है कि ख़ुदा और पैग़म्बर के अहकाम में किसी चूँ-चरा की गुंजाइश नहीं है। मुसलमानों का काम सुनना और फ़रमाँबरदारी करना है। ख़ुदा और उसके पैग़म्बर के फ़ैसले के बाद किसी मुसलमान को यह इख़्तियार बाक़ी नहीं रहता कि वह अपने मामले में ख़ुद कोई फ़ैसला करे। रहा तीसरा दर्जा तो उसके बारे में यह कहा गया है कि अमीर या हाकिम की फ़रमाँबरदारी ख़ुदा और पैग़म्बर के अहकाम के ताबे (अधीन) है और इख़्तिलाफ़ या झगड़े की सूरत में ख़ुदा और पैग़म्बर की तरफ़ पलटना लाज़िम है। ऐसे साफ़, स्पष्ट और ख़ुले अहकाम के मौजूद होते हुए इसकी बिलकुल ही कोई गुंजाइश नहीं है कि ख़ुदा और रसूल से मुराद इमारत ली जाए और अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के मंसबवाली इमारत को उस इमारत के साथ मिला दिया जाए जो मुसलमानों के आम अमीरों (नाइबों) को हासिल है। इस मामले में "कहो, ये अनफ़ाल (ग़नीमतें) अल्लाह और रसूल के लिए हैं" (सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-1) से जो दलील दी गई है वह सही नहीं है। "ग़नीमत के माल ख़ुदा और रसूल के लिए है।" कहने का मतलब यह है कि ख़ुदा और पैग़म्बर ने इस्लामी जमाअत का जो निज़ाम क़ायम किया है उसके मस्लहतों (हितों) में ये ग़नीमतें ख़र्च की जाएँ। इससे यह मतलब कहाँ निकलता है कि अल्लाह और रसूल से मुराद इमारत है।

हदीस के बारे में लेखक का मसलक

हदीस के बारे में लेखक ने क़रीब-क़रीब वही मसलक इख़्तियार किया है जो हदीस के इनकारियों के एक बड़े गरोह का मसलक है। वे लिखते हैं—

"किताब की तालीम का एक विभाग यह भी था कि पैग़म्बर उसके हुक्मों पर अमल करके दिखा दे ताकि उम्मत उसी नमूने पर अमल-पैरा हो

जाए।"

"हक़ीक़त में तुम लोगों के लिए अल्लाह के पैग़म्बर में एक बेहतरीन नमूना है।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-21)

इसी लिए हमारे नबी (सल्ल॰) ने क़ुरआन के सभी अहकाम, मिसाल के तौर पर नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात वग़ैरा पर अमल करके दिखा दिया और मुसलमान उसी नमूने पर अमल करने लगे। यह बेहतरीन नमूना मुस्लिम उम्मत के पास अमले-मुतवातिर (क्रमिक कर्म) की सूरत में मौजूद है, जिसके मुताबिक़ ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) के ज़माने से एक नस्ल के बाद दूसरी नस्ल पुश्त-दर-पुश्त वह अमल करती चली आती है। इसलिए यह यक़ीनी और दीनी है, इसकी मुख़ालफ़त ख़ुद क़ुरआन की मुख़ालफ़त है।

दूसरी जगह लेखक ने लिखा है—

"ग़ैर-यक़ीनी चीज़ का दीन में कुछ दख़ल नहीं।"

इन इबारतों और लेखक की उन व्याख्याओं से जो ऊपर बयान हो चुकी हैं उनका मसलक और मत साफ़ तौर से मालूम होता है—

1. अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के अदालती फ़ैसले और वे क़ानून और नियम जो आप (सल्ल॰) ने राजनीतिक, जंगी, सांस्कृतिक और सामूहिक मामलों में क़ौम के अमीर (हाकिम) की हैसियत से लागू किए थे, उस पैग़म्बरी नमूने से बाहर हैं जिसकी पैरवी का आम हुक्म क़ुरआन में दिया गया है, इसलिए उनकी अब ज़रूरत नहीं रही, क्योंकि इमारत (हुकूमत) के फ़र्ज़ हंगामी हैं और ज़माने के साथ-साथ माहौल भी बदलता रहता है।

2. सिर्फ़ उन मामलों में ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) का अमल (न कि कथन) पैरवी के क़ाबिल है जो इबादतों और दीनी (धार्मिक) अमल से ताल्लुक़ रखते हैं। और जिनमें पैग़म्बर (सल्ल॰) ने क़ुरआनी अहकाम पर अमल करने की सूरत ख़ुद अपने अमल से बता दी है।

3. लेखक के नज़दीक सिर्फ़ वह अमले-मुतवातिर यक़ीनी है जो अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के ज़माने से अब तक जारी है, और जिसकी फ़रमाँबरदारी हर नस्ल अपने से पहली नस्ल को देखकर करती रही है। रहीं वे रिवायतें जो

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के कर्मों और कथनों से मुताल्लिक़ हदीसों में आई हुई हैं तो वे यक़ीनी नहीं हैं और दीन में उनका कुछ दख़ल नहीं।

इनमें से पहली दोनों बातों के ताल्लुक़ से पूरे यक़ीन के साथ कह सकता हूँ कि क़ुरआन मजीद के बिलकुल ख़िलाफ़ हैं। क़ुरआन में कोई हल्के-से-हल्का इशारा भी ऐसा नहीं मिलता जिसकी बुनियाद पर यह हुक्म निकलता हो कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल.) के सिर्फ़ मज़हबी अमल ही हमेशा के लिए फ़रमाँबरदारी के क़ाबिल हैं, रहे समाजी, तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और इज्तिमाई मामलों में आप (सल्ल.) के फ़ैसले और आप (सल्ल.) के लागू किए हुए क़ानून, तो वे सब उस ज़माने के लिए ख़ास थे जिस ज़माने में वे लागू किए गए थे। अगर ऐसी कोई आयत क़ुरआन में हो जिससे इन दोनों तरह के अमलों (कर्मों) में फ़र्क़ किया जा सकता हो और दोनों के अहकाम मुख़्तलिफ़ ठहराए जा सकते हों तो उसको पेश किया जाए। मुझको तो क़ुरआन में साफ़ हुक्म यह मिलता है—

> "किसी मोमिन मर्द और किसी मोमिन औरत को यह हक़ नहीं है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले में फ़ैसला कर दे, तो फिर उसे अपने उस मामले में ख़ुद फ़ैसला करने का इख़्तियार हासिल रहे। और जो कोई अल्लाह और उसके पैग़म्बर की नाफ़रमानी (अवज्ञा) करे तो वह खुली हुई गुमराही में पड़ गया।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-36)

इस आयत में किसी ज़माने को ख़ास नहीं किया गया है। मोमिन मर्द और मोमिन औरत से पैग़म्बरी के ज़माने के ख़ास मोमिन मर्द और मोमिन औरत मुराद नहीं लिए जा सकते। अरबी में 'अमूरन' (मामले) का शब्द बहुत ही आम है जो हर तरह के मामलों पर हावी है, चाहे वे दीनी हों या दुनियवी। अल्लाह और रसूल से मुराद अल्लाह और रसूल ही हैं, 'इमारत' हरगिज़ नहीं है। क्योंकि अमीर या हाकिम बहरहाल मोमिन ही होंगे, और यहाँ सारे मोमिन मर्दों और मोमिन औरतों से यह हक़ छीन लिया गया है कि ख़ुदा और रसूल ने जिस मामले का फ़ैसला कर दिया हो उसमें उन्हें इजतिमाई तौर से या अलग-अलग ख़ुद फ़ैसला करने का कोई इख़्तियार

बाक़ी रहे। फिर कहा गया है कि "जो उसके ख़िलाफ़ अमल करेगा, वह खुली गुमराही में जा पड़ेगा।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-36) यह इशारा है उस तरफ़ कि अल्लाह ने और उसकी हिदायत से उसके पैग़म्बर ने अपने अहकाम और अपने क़ानून से इस्लामी जमाअत का जो निज़ाम क़ायम कर दिया है, उसका क़ायम रहना निर्भर ही इसपर है कि जो अहकाम जारी कर दिए गए हैं और जो क़ानून लागू कर दिए गए हैं उनका ठीक-ठीक पालन किया जाए। अगर ख़ुदा और उसके रसूल की क़ौली और अमली रहनुमाई को नज़रन्दाज़ करके लोग ख़ुद अपनी राय और अपने इख़्तियार से कुछ तरीक़े अपनाएँगे तो यह निज़ाम बाक़ी न रहेगा और इस निज़ाम के टूटते ही तुम सीधे रास्ते से भटककर बहुत दूर निकल जाओगे। बड़ी हैरत है कि जिस क़ुरआन में ऐसी साफ़ और स्पष्ट हिदायत मौजूद है उसकी तालीमात (शिक्षाएँ) लिखनेवाले ने वह मसलक (मत) अपनाया है जो आप अभी सुन आए हैं!

रही तीसरी बात, तो उसके बारे में मैंने अपने ख़यालात तफ़सील के साथ अपने लेख 'हदीस और क़ुरआन' में बयान किए हैं। इसलिए यहाँ उनके दोहराने की ज़रूरत नहीं। हाँ, मैं जनाब लेखक से सिर्फ़ यह सवाल करूँगा कि अगर कोई आदमी उन सारी बिदअतों और ख़ुराफ़ातों को जो आज मुसलमानों की मज़हबी ज़िन्दगी में चलन पा गई हैं, वे 'यक़ीनी अमले-मुतवातिर' क़रार दे जो अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के ज़माने से एक नस्ल के बाद दूसरी नस्ल में चला आ रहा है, और इस बुनियाद पर उन्हें दीन में दाख़िल समझे तो आपके पास कौन-सा ऐसा यक़ीनी ज़रिआ है जिससे आप यह फ़ैसला कर सकेंगे कि यह अमल ख़ुदा के पैग़म्बर का नहीं है बल्कि बाद के लोगों की ईजाद है? आप कहेंगे कि हम क़ुरआन मजीद की तरफ़ पलटेंगे और उसकी आयतों से इन बिदअतों को रद्द करेंगे। मगर मैं कहता हूँ कि पहले तो ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) के क़ौल और अमल से क़ुरआन की आयतों के जो मानी तय होते हैं उसको नज़रन्दाज़ करने के बाद आयतों की तावील (स्पष्टीकरण) में एक बिद्अत-पसन्द इनसान इतनी गुंजाइश निकाल सकता है कि उसकी बहुत-सी बिदअतों को रद्द करना मुशकिल हो जाएगा।

दूसरे अगर आपने क़ुरआन से उसकी बिदअतों को रद्द कर भी दिया तो यह उसके इस दावे को रद्द करना न होगा कि यह वही यक़ीनी अमले-मुतवातिर है जो ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) के ज़माने से एक नस्ल के बाद दूसरी नस्ल में चला आ रहा है। आप अपने मसलक (मत) के मुताबिक़ उस अमल को ग़ैर-यक़ीनी नहीं कह सकते और आप इतिहास से भी (जो रिवायतों की तरह ग़ैर-यक़ीनी ही होना चाहिए) यह दलील नहीं दे सकते कि ये बिदअतें पैग़म्बरी के ज़माने में न थीं, बल्कि फ़ुलाँ ज़माने में जारी हुईं। अब सिर्फ़ यही सूरत रह जाती है कि आप उनको यक़ीनी मान लें, फिर या तो उनकी फ़रमाँबरदारी और पैरवी करें या यह फ़ैसला कर दें कि पैग़म्बर का अमल क़ुरआन की तालीम के ख़िलाफ़ था। मालूम नहीं कि विद्वान लेखक और उनके हम-ख़याल लोगों के पास इस पेचीदगी का क्या हल है?

(तर्जुमानुल-क़ुरआन, रजब् 1354 हि॰/अक्टूबर सन् 1934 ई॰)

(2)

रिसालत और उसके अहकाम

मेरे लेख 'इत्तिबा व इताअते-रसूल' को देखकर मेरे दोस्त चौधरी गुलाम अहमद परवेज़ साहब ने अपने एक बहुत लम्बे ख़त में नीचे लिखे अपने ख़यालों का इज़हार किया है–

...लेकिन मुझे आपकी "वह अपने ख़ाहिशे-नफ़्स (मन की इच्छा) से नहीं बोलता" (क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयत-3) की तफ़सीर (व्याख्या) से कुछ इख़्तिलाफ़ है।

आपने लिखा है–

"जिस वक़्त से अल्लाह ने नबी (सल्ल॰) को पैग़म्बरी के पद पर विराजमान किया उस वक़्त से लेकर जिस्मानी ज़िन्दगी की आख़िरी साँस तक आप (सल्ल॰) हर पल और हर हाल में ख़ुदा के पैग़म्बर थे। आप (सल्ल॰) का हर अमल और हर कथन ख़ुदा के पैग़म्बर की हैसियत से था।"

फिर दूसरी जगह आप लिखते हैं–

"ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) जिस वक़्त जिस हाल में जो कुछ करते थे पैग़म्बर की हैसियत से करते थे।"

इसका मक़सद साफ़ है कि नबी (सल्ल॰) की हर बात और हर अमल ख़ुदा की तरफ़ से होता था। और पैग़म्बर की हैसियत से उन आमाल को लागू करने की वजह से मुस्लिम उम्मत के लिए उसकी पैरवी ज़रूरी है।

इस सिलसिले में यहाँ सिर्फ़ दो-एक इशारों से बात समझाने की कोशिश करूँगा। पहले तो क़ुरआन मजीद को लीजिए। आपको बहुत-से ऐसे मामले मिलेंगे जिनमें नबी (सल्ल॰) को अल्लाह की तरफ़ से चेतावनी और तंबीह की गई है। मिसाल के तौर पर आप (सल्ल॰) ने एक क़िस्म के शहद को न खाने की क़सम खाली तो कहा गया–

"ऐ नबी! तुम क्यों उस चीज़ को हराम करते हो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल की है।" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-1)

ज़ाहिर है कि अगर नबी (सल्ल॰) का शहद को अपने ऊपर हराम कर लेना ख़ुदा की जानिब से था तो ख़ुदा ने इसपर ऐतिराज़ क्यों किया?

एक दूसरी जगह है—

"ऐ नबी! अल्लाह तुम्हें माफ़ करे, तुमने क्यों उन्हें छूट दे दी?" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-43)

अब अगर नबी (सल्ल॰) का इजाज़त दे देना वह्य (प्रकाशना) के मुताबिक़ था और यह काम ख़ुदा के पैग़म्बर की हैसियत से था तो इसपर वह्य भेजनेवाले ने तंबीह किस लिए फ़रमाई? इसी तरह—

"उसने त्योरी चढ़ाई और बेरुख़ी बरती इस बात पर कि वह अन्धा उसके पास आ गया।" (क़ुरआन, सूरा-80 अ-ब-स, आयतें-1,2)

अगर ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) का पेशानी पर बल ले आना नबी की हैसियत से था तो क़ुरआन मजीद में इसपर तंबीह क्यों आई?

इन वज़ाहतों से साफ़ ज़ाहिर है कि नबी (सल्ल॰) के ये काम और ये बातें पैग़म्बर की हैसियत से न थीं, बल्कि ज़ाती हैसियत से थीं। इसका यह मतलब नहीं कि (अल्लाह की पनाह!) ये मामले गुमराही व बहकावे में आ जाने और मन की इच्छा की बिना पर थे बल्कि यह कि दुनिया के मामलों में इनसान होने की हैसियत से इनसानी भूल-चूक होना आप (सल्ल॰) के साथ भी था जिसमें ऐसी मामूली भूल-चूक कोई मानी नहीं रखती। और इससे नबी (सल्ल॰) के सबसे बेहतर इनसान होने और क़ुरआन के अल्लाह की तरफ़ से होने के लिए इस्लाम-दुश्मनों के लिए जीती-जागती गवाही मिलती है। इसकी गवाही खुद हदीसों से भी मिलती है। शाह वलीउल्लाह साहब (रह॰) ने अपनी किताब 'हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ा' में एक बाब (अध्याय) इस उनवान से लिखा है जिसमें वे लिखते हैं, "जो कुछ नबी (सल्ल॰) के ज़रिए कहा गया है और हदीस की किताबों में जमा किया हुआ है उसकी दो क़िस्में हैं। एक तो वे बातें जो पैग़म्बरी की तबलीग़ (प्रचार-

प्रसार) से ताल्लुक़ रखती हैं। दूसरे वे मामले जिनको पैग़म्बरी की तबलीग़ से कोई ताल्लुक़ नहीं। इसी के ताल्लुक़ से आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मैं एक इनसान हूँ। जब तुमसे कोई मज़हबी बात बयान करूँ तो उसको अपनाओ और जो बात मैं अपनी राय से कहूँ तो मैं एक इनसान हूँ।" (हदीस : मुस्लिम-2362)

इसी बुनियाद पर खजूर के पेड़ के गाभा लगाने के मशहूर वाक़िए के बाद नबी (सल्ल॰) ने कहा था—

"मैंने सिर्फ़ ऐसा गुमान किया था। अन्दाज़े से करी हुई बात पर मुझसे जवाब न माँगो, लेकिन मैं ख़ुदा की तरफ़ से कोई बात बयान करूँ तो उसको अपना लो इसलिए कि मैं ख़ुदा पर हरगिज़ झूठ नहीं बोलता।" (हदीस : मुस्लिम-2361)

इसी लिए शाह साहब (रह॰) कहते हैं कि इसमें वे बातें हैं जिन्हें नबी (सल्ल॰) इनसान की हैसियत से किया करते थे या कभी-कभी बिना इरादा या याददिहानी के लिए बयान फ़रमाते। और इसके बाद वे उन मौक़ों और बातों की मिसालें भी बयान करते हैं। इन्हीं में उन बातों को भी लेते हैं जो नबी (सल्ल॰) के ज़माने में एक जुज़ई (आंशिक) मस्लहत रखते थे, लेकिन वे पूरी उम्मत के लिए स्थायी और ज़रूरी न थीं।

इससे ज़ाहिर है कि जो कुछ नबी (सल्ल॰) दीन-इस्लाम के बारे में फ़रमाते थे वही पैग़म्बर की हैसियत से होता था, चाहे वह वह्य का उतरना हो या इज्तिहादे-रसूल (सल्ल॰) यानी नबी (सल्ल॰) के अपने फ़ैसले और कोशिशें वग़ैरा की सूरत में हो, और उन्हीं का पैरवी करना उम्मत के लिए वाजिब है। और इसके अलावा जो बातें आप (सल्ल॰) इनसान होने की हैसियत से कहते उनमें यह क़ैद न थी। यही वजह है कि कुछ मामलों के मश्वरों में हम देखते हैं कि सहाबा (रज़ि॰) ने अपनी राय भी पेश की और वह अपनाई भी गई। यही नहीं नबी (सल्ल॰) की ऐसी राय के ख़िलाफ़ अमल भी था। इसलिए क़ुरआन मजीद गवाह है कि आप (सल्ल॰) ने हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) से कहा कि "अपनी बीवी को अपने पास रोके रखो," लेकिन

उन्होंने हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) को तलाक़ दे दी। क्या आप सोच सकते हैं कि पैग़म्बर की हैसियत से नबी (सल्ल॰) का फ़रमान होता और हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) उसकी ख़िलाफ़वर्ज़ी करते?

हदीस की किताबों में कई ऐसी घटनाएँ बयान हुई हैं जिनमें नबी (सल्ल॰) ने कोई बात कही और सहाबा (रज़ि॰) ने पूछा की क्या यह हुक्म पैग़म्बर की हैसियत से कह रहे हैं या अपनी राय के तौर पर? इसी लिए बद्र की लड़ाई में जब आप (सल्ल॰) एक जगह पर कैम्प लगाना चाहते थे तो एक सहाबी ने यही सवाल किया, और जब मालूम हुआ कि नबी (सल्ल॰) अपनी राय से ऐसा कह रहे हैं तो उन्होंने बड़े अदब के साथ कहा कि अगर आप (सल्ल॰) आगे जाकर ख़ेमा लगाएँ तो ज़्यादा मस्लहत के क़रीब होगा। चुनाँचे फिर ऐसा ही किया गया।

इन सब बातों से साफ़ ज़ाहिर होता है कि नबी (सल्ल॰) हर आन (पल) और हर हाल में पैग़म्बर नहीं होते थे और आप (सल्ल॰) का हर क़ौल (कथन) और हर अमल पैग़म्बर की हैसियत से नहीं होता था। हाँ, जो ख़ुदा का बन्दा महबूब (प्रेमी) के रंग में रंग जाना चाहे उसकी बात बिलकुल अलग है। लेकिन इस शक्ल में और वाजिब होने की सूरत में बड़ा फ़र्क़ है। हालाँकि शाह साहब (रह॰) ने नबी (सल्ल॰) के फ़ैसले भी इसी के तहत रखे हैं जो पैग़म्बरी की हैसियत लिए हुए न थे (शायद उनकी मुराद वक़्ती फ़ैसलों से होगी और 'तालीमात' नाम की किताब लिखनेवाले ने भी इसी बिना पर इमारत को पैग़म्बरी से अलग किया है) लेकिन मैं तो नबी (सल्ल॰) के दीन से मुताल्लिक़ फ़ैसलों को ठीक-ठीक पैग़म्बरी की तबलीग़ में ही समझता हूँ और उनकी पैरवी को भी ज़रूरी समझता हूँ। हाँ, एक और चीज़ है जो इमारत और पैग़म्बरी की बहस में मेरे सामने आ गई है हालाँकि 'तालीमात' के लेखक ने इसपर वाज़ेह तौर पर रौशनी नहीं डाली लेकिन दलीलों से मालूम होता है कि उनका मंशा शायद यही है जो मेरे ज़ेहन में आया है। जहाँ तक नबी (सल्ल॰) का ताल्लुक़ है दीन के मामलों में आप (सल्ल॰) की फ़रमाँबरदारी क्या पैग़म्बर की हैसियत से और क्या अमीर की हैसियत से क़ियामत तक के लिए है। इसमें न उस वक़्त किसी को इख़्तिलाफ़ का हक़

था, न हो सकता है। लेकिन सवाल यह है कि नबी (सल्ल॰) के बाद क़ुरआन मजीद ने ख़ुदा और पैग़म्बर (सल्ल॰) की तरफ़ लौटने का हुक्म दिया है तो इस्लामी निज़ाम को बाक़ी रखने और पायेदारी के लिए यह ज़रूरी है कि कोई ऐसी सनद (प्रमाण, Authority) हो जो यह बता सके कि ख़ुदा और पैग़म्बर का इस बारे में यही फ़ैसला है, या वक़्ती मामलों में ऐसा ही फ़ैसला जारी कर सके। ज़ाहिर बात है कि अगर ख़लीफ़ा सच्चा और हक़ पर हो और उसके साथ उसकी मजलिसे-शूरा (सही तरीक़े पर चुनी हुई) काम कर रही हो तो यही जमाअत यानी ख़लीफ़ा-इन-कौंसिल (Caliph-in-Council) ही वह आख़िरी सनद (Authority) होगी जो मुस्लिम उम्मत के लिए 'ख़ुदा और पैग़म्बर' की नुमाइन्दगी करेगी यानी उस मजलिसे-शूरा का फ़ैसला आख़िरी फ़ैसला होगा और किसी आदमी को उसके ख़िलाफ़ इख़्तिलाफ़ का हक़ न होगा। वरना अगर हर आदमी को इख़्तियार दे दिया जाए कि वह 'अल्लाह और पैग़म्बर की तरफ़ फेर दो' का फ़रीज़ा ख़ुद ही सरअंजाम दे ले तो ज़ाहिर है कि इस्लामी निज़ाम किसी तरह भी क़ायम नहीं रह सकता। यह मजलिसे-आला (Supreme Council) होगी जिसके फ़ैसलों की फिर कहीं अपील न होगी। और यही जमाअत क़ानून बनाने का काम करेगी। हाँ, जब इस जमाअत का कोई मेम्बर (सदस्य) किताब व सुन्नत के ख़िलाफ़ फ़ैसले जारी करे तो आम लोगों को इख़्तियार होगा कि उसे उस पद से निकालकर उसकी जगह दूसरा चुनाव अमल में ले आएँ। क्योंकि यहाँ ऐसे बाइख़्तियार लोगों से झगड़े का हक़ हासिल हो जाएगा जो उम्मत को ख़ुदा और पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी की तरफ़ नहीं ले जाते, लेकिन ज़ाती तौर पर किसी को हक़ न होगा कि उनके फ़ैसलों से इस बिना पर सरताबी (बग़ावत) शुरू कर दे कि वह उसके अपने ख़याल में किताब व सुन्नत के ख़िलाफ़ हैं। यही वह बाइख़्तियार जमाअत होगी जो वक़्ती मामलों में मस्लहत की बिना पर किसी पिछले वक़्ती फ़ैसले या इन्तिज़ाम के ख़िलाफ़ भी फ़ैसला कर सकेगी जैसा कि सीरत और हदीसों की किताबों से साफ़ ज़ाहिर है।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने नजरान के ईसाइयों और ख़ैबर के यहूदियों को अपनी-अपनी जगह रहने दिया। लेकिन हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अपनी

ख़िलाफ़त के ज़माने में वक़्त की मस्लहत को देखते हुए उनको वहाँ से निकाल दिया। और यह जो कहा जाता है कि हम देखते हैं कि कभी-कभी वक़्त के ख़लीफ़ा (मिसाल के तौर पर हज़रत उमर रज़ि०, हज़रत अली रज़ि०) भी अदालतों में प्रतिवादी (जिसके ख़िलाफ़ अदालत में मुक़द्दमा किया गया हो) की हैसियत से पेश हुआ करते थे जिससे ज़ाहिर है कि ख़लीफ़ा (हाकिम) के ख़िलाफ़ भी हर शख़्स को इख़्तिलाफ़ रखने का हक़ हासिल है, तो वाज़ेह रहे कि ये लोग ख़लीफ़ा और उसकी निजी हैसियत (Personal Capacity) में फ़र्क़ नहीं करते। अदालतों में हज़रत उमर (रज़ि०) और हज़रत अली (रज़ि०) पेश होते थे। और दावे उनकी ज़ात के ख़िलाफ़ थे न कि 'ख़लीफ़ा-इन-कौनसिल' के ख़िलाफ़। और यह इस्लामी हुकूमत के निज़ाम की नुमायाँ ख़ुसूसियत है कि उसने क़ानून के लागू करनेवालों को भी क़ानून के दायरे में आने से अलग नहीं किया। फिर यह भी वाज़ेह रहे कि 'ख़लीफ़ा-इन-कौनसिल' की हैसियत भी क़ानून बनानेवाले की नहीं होगी। बल्कि जहाँ तक क़ानून के उसूल का ताल्लुक़ है वे तो किताब व सुन्नत में हमेशा के लिए तय हो चुके। अब उन उसूलों को लागू करना या उनकी रौशनी में छोटे-छोटे मामलों में क़ानून और क़ायदे बनाना यह उस मजलिसे-शूरा का काम होगा। मेरा ख़याल है कि 'तालीमात' के लेखक ने जहाँ यह लिखा है कि क़ुरआन मजीद में जहाँ-जहाँ ख़ुदा और पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी का हुक्म आया है उससे मुराद इमारत (नेतृत्व) है, उनके पेशे-नज़र यही ख़ाका है जो ऊपर बयान किया गया है और अगर ऐसा ही है तो इसमें किसी ऐतिराज़ की गुंजाइश नहीं कि इस बाइख़्तियार जमाअत की इताअत ही ठीक पैग़म्बर की इताअत है और इसकी नाफ़रमानी ख़ुदा और पैग़म्बर की नाफ़रमानी है, जैसा कि नबी (सल्ल०) ने ख़ुदा कहा है—

> "जिस शख़्स ने अमीर की फ़रमाँबरदारी की उसने मेरी फ़रमाँबरदारी की और जिसने उसकी नाफ़रमानी की उसने मेरी नाफ़रमानी की।"
>
> (हदीस : मुस्लिम-1835)

बहस बहुत लम्बी हो गई। लेकिन उम्मीद है कि इसमें बहुत-सी काम की बातें निकल आएँगी। आख़िर में इतनी गुज़ारिश करना ज़रूरी है कि चूँकि

मैंने इसमें आपको मुख़ातब किया है इसलिए वही बातें पेश की हैं जिनमें मुझे आपके जवाब के बाद और ज़्यादा इत्मीनान की ज़रूरत नज़र आई। रहे वे मामले जिनसे इत्तिफ़ाक़ है या 'तालीमात' के लेखक से जिन मामलों में इख़्तिलाफ़ है उन्हें दोहराना बेफ़ायदा समझा गया है और ये गुज़ारिशें भी सिर्फ़ 'अपने दिल को इत्मीनान दिलाने के लिए' हैं।

जवाब

पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी के मामले में इस बात पर तो सबकी सहमति है कि कोई पैग़म्बर अपनी ज़ाती हैसियत में ऐसा नहीं हो सकता कि उसकी फ़रमाँबरदारी और पैरवी की जाए। न मूसा (अलैहि॰) की फ़रमाँबरदारी और पैरवी इस बिना पर है कि वे मूसा-बिन-इमरान हैं, न ईसा (अलैहि॰) इस वजह से पैरवी और फ़रमाँबरदारी के क़ाबिल हैं कि वे ईसा-बिन-मरयम हैं, और न नबी (सल्ल॰) की फ़रमाँबरदारी इस हैसियत से लाज़िम है कि आप (सल्ल॰) मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह हैं। फ़रमाँबरदारी और पैरवी जो कुछ भी है इस हैसियत से है कि ये हज़रात अल्लाह के पैग़म्बर हैं। अल्लाह ने इनको वह इल्मे-हक़ अता किया है जो आम लोगों को अता नहीं किया, और उनको वह हिदायत बख़्शी जो आम इनसानों को नहीं बख़्शी और उनको दुनिया में अपनी रिज़ा (ख़ुशी) के मुताबिक़ ज़िन्दगी बसर करने के वे सही तरीक़े बताए जिनको आम लोग अपनी राय और अक़्ल या नबियों के सिवा दूसरे लोगों की रहनुमाई से मालूम नहीं कर सकते। अब इख़्तिलाफ़ जिस मामले में पैदा होता है वह यह है कि पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी और पैरवी किस बात में है और किस हद तक है।

एक गरोह कहता है कि पैरवी और फ़रमाँबरदारी सिर्फ़ उस किताब की है जो अल्लाह की तरफ़ से उसका पैग़म्बर लेकर आता है। किताब की तबलीग़ हो जाने के बाद पैग़म्बर की पैग़म्बरीवाली हैसियत ख़त्म हो जाती है। फिर वह भी वैसा ही एक इनसान है जैसे और दूसरे इनसान। दूसरे इनसान अगर अमीर और क़ौम के सरदार हों तो सिर्फ़ नज़्म और ज़ब्त (अनुशासन, Discipline) के लिए उनकी फ़रमाँबरदारी लाज़िम होगी। मगर

मज़हबी फ़रीज़ा (काम) न होगी। दूसरे अगर आलिम, हकीम और क़ानून बनानेवाले हों तो उनकी ख़ूबियों (Merits) का लिहाज़ करते हुए उनकी फ़रमाँबरदारी की जाएगी और यह फ़रमाँबरदारी इख़्तियारी होगी, वाजिब न होगी। यही मामला ख़ुदा के पैग़म्बर का भी है। किताब की तबलीग़ के सिवा दूसरे सभी मामलों में पैग़म्बर की हैसियत सिर्फ़ शख़्सी है। एक शख़्स की हैसियत से अगर वह अमीर (हाकिम) है तो उसकी फ़रमाँबरदारी आरज़ी है न कि हमेशा के लिए। अगर वह क़ाज़ी (जज) है तो उसके फ़ैसले वहीं तक लागू होंगे जहाँ तक उसके फ़ैसले की हदें (Jurisdiction) हैं। उनसे बाहर ज़्यादा-से-ज़्यादा एक सम्मानित जज की हैसियत से उसके फ़ैसले एक मिसाल के रूप में लिए जाएँगे, न कि एक क़ानून-साज़ की हैसियत से। अगर वह हकीम है तो उसकी ज़बान से जो हिकमत और अख़लाक़ की बातें निकलेंगी वे अपनी क़द्रो-क़ीमत के लिहाज़ से क़बूल की जाएँगी, जिस तरह दूसरे आलिमों और दानिशवरों की ऐसी ही बातें क़बूल की जाती हैं। सिर्फ़ इस बिना पर कि वे पैग़म्बरी का पद रखनेवाले की ज़बान से निकली हैं वे दीन में दाख़िल नहीं समझी जाएँगी। इसी तरह अगर वह एक नेक इनसान है और उसकी ज़िन्दगी अपने रहन-सहन, आदाब और मामलों के लिहाज़ से एक बेहतरीन ज़िन्दगी है तो हम बिना झिझक उसको एक नमूना (Model) बनाएँगे जिस तरह एक ग़ैर-नबी की अच्छी ज़िन्दगी को नमूना मानने में हम आज़ाद हैं। लेकिन उसका कोई अमल और क़ौल (कथन) हमारे लिए अख़लाक़, सामाजिक रहन-सहन, मईशत (आर्थिक व्यवहार) और मामलों में ऐसा क़ानून न होगा जिसकी पैरवी हमारे ऊपर वाजिब हो। यह मज़हब (मत) उस गरोह का है जो आजकल अहले-क़ुरआन कहलाता है।

एक दूसरा गरोह इस ख़याल में थोड़ा-सा बदलाव करता है। वह कहता है कि रसूल के ज़िम्मे सिर्फ़ किताब पहुँचा देना ही न था, बल्कि किताब के हुक्मों पर अमल करके दिखा देना भी था कि उम्मत उसी नमूने पर अमल करनेवाली बने। इसी लिए इबादतों और इताअतों वग़ैरा के बारे में किताब के हुक्मों की जो तफ़सीली अमली सूरत रसूल ने बताई है, उसकी पैरवी भी किताब ही की पैरवी है, और दीनी फ़र्ज़ है। बाक़ी रहे वे मामले जो किताब

के हुक्मों के अलावा पैग़म्बर अपनी निजी हैसियत में एक अमीर, एक जज, एक समाज-सुधारक, एक हकीम, एक शहरी और जमाअत के एक सदस्य होने की हैसियत से अंजाम दे तो उनमें कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो एक स्थायी और आलमगीर ज़ाबिता और क़ानून बनानेवाली हो और जिसकी पैरवी हमेशा के लिए एक दीनी फ़र्ज़ हो। इस गरोह के नुमाइन्दे जनाब मौलाना असलम जैराजपुरी हैं।

एक तीसरा गरोह वह है जो रसूल की पैग़म्बरीवाली हैसियत को उसकी ज़िन्दगी के एक बहुत बड़े हिस्से पर हावी समझता है। अख़लाक़, सामाजिक रहन-सहन, हुक्मों और फ़ैसलों के मामलों और बहुत-से दूसरे मामलों में उसके क़ौल (कथन) और अमल का ख़ुदा की तरफ़ से होना तसलीम करता है, और यह भी मानता है कि ये सब चीज़ें उम्मते-मुस्लिमा के लिए अच्छा नमूना हैं। मगर वह पैग़म्बरीवाली हैसियत और निजी हैसियत में फ़र्क़ ज़रूर करता है और यह समझता है कि रसूल की ज़िन्दगी के कुछ मामले ऐसे ज़रूर हैं जो पैग़म्बरी की हैसियत से बाहर हैं, और क़ाबिले-तक़लीद (पैरवी) नमूना नहीं। हालाँकि वह कोई ऐसी साफ़ लाइन नहीं खींच सकता जो पैग़म्बरीवाली हैसियत और निजी हैसियत में खुला फ़र्क़ कर देती हो, और एक ऐसी हद मुक़र्रर करता हो जहाँ पहुँचकर पैग़म्बर की हैसियत सिर्फ़ एक इनसान की रह जाती है। मैं समझता हूँ कि चौधरी साहब इसी गरोह से ताल्लुक़ रखते हैं, और मैं पहले ही यह बात साफ़ कर देना चाहता हूँ कि उनका मसलक पहले बयान किए गए दोनों गरोहों की बनिस्बत हक़ (सच्चाई) से बहुत ज़्यादा क़रीब है। हालाँकि थोड़ी ग़लती इसमें ज़रूर है लेकिन ख़ुदा का शुक्र है कि वह गुमराही की हद तक नहीं पहुँची।

चौथा गरोह कहता है कि पैग़म्बर की निजी हैसियत और पैग़म्बरी की हैसियत हालाँकि यक़ीन के एतिबार में दो अलग-अलग हैसियतें हैं लेकिन वुजूद में दोनों एक ही हैं और उनके बीच अमलन कोई फ़र्क़ करना मुमकिन नहीं है। पैग़म्बरी का पद दुनियावी ओहदों की तरह नहीं है कि ओहदेदार (पदाधिकारी) जब तक अपने पद की कुर्सी पर बैठा है, पदाधिकारी है, और जब उससे उतरा तो एक साधारण आदमी है। बल्कि पैग़म्बर जिस वक़्त

पैग़म्बरी के मंसब पर विराजमान होता है उस वक़्त से मरते दम तक वह हर समय और हर पल मामूर (नियुक्त On Duty) होता है। और वह कोई ऐसा काम नहीं कर सकता जो उस सल्तनत की पॉलिसी के मुख़ालिफ़ हो जिसका वह नुमाइन्दा बनाकर भेजा गया है। उसकी ज़िन्दगी के सभी मामले चाहे वे इमाम की हैसियत से हों या अमीर की हैसियत से, जज की हैसियत से हों या मुअल्लिमे-अख़लाक़ (नैतिक शिक्षक) की हैसियत से, एक नागरिक और सोसाइटी के एक फ़र्द (सदस्य) की हैसियत से हों, या एक शौहर, बाप, भाई, रिश्तेदार और दोस्त की हैसियत से, सबपर उसकी पैग़म्बरवाली हैसियत इस तरह हावी होती है कि उसकी ज़िम्मेदारियाँ किसी हाल में एक पल के लिए भी उससे अलग नहीं होतीं। यहाँ तक कि जब वह तन्हाई में अपनी बीवी के पास होता है, उस वक़्त भी वह उसी तरह ख़ुदा का पैग़म्बर होता है जिस तरह वह मस्जिद में नमाज़ पढ़ाते वक़्त होता है। ज़िन्दगी के अलग-अलग विभागों में वह जो कुछ करता है ख़ुदा की हिदायत के तहत करता है। उसपर हर पल ख़ुदा की तरफ़ से कड़ी निगरानी क़ायम रहती है, जिसके मातहत वह उन्हीं हदों के अन्दर चलने पर मजबूर होता है जो ख़ुदा ने तय कर दी हैं, और अपने क़ौल (कथनों) में, अमल में और ज़िन्दगी के पूरे रवैये में दुनिया के सामने इस बात का इज़हार करता है कि ये हैं वे उसूल और नियम जिनपर इनसान की इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) और इज्तिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी का निज़ाम क़ायम होना चाहिए। और ये हैं वे हदें जिनके दायरे में इनसान की अमली आज़ादी को सीमित होना चाहिए। इस ख़िदमत को नबी अपनी निजी और घरेलू ज़िन्दगी में भी उसी तरह अंजाम देता रहता है जिस तरह अपनी सरकारी हैसियत में, और किसी मामले में भी अगर उसके क़दम को ज़रा-सी लड़खड़ाहट हो जाती है तो उसको फ़ौरन तंबीह की जाती है, क्योंकि उसी की ख़ता सिर्फ़ उसकी ख़ता नहीं, बल्कि एक पूरी उम्मत (समुदाय) की ख़ता है। उसको भेजने का मक़सद ही यह होता है कि वह लोगों के बीच ज़िन्दगी बसर करके उनके सामने एक 'मुस्लिम' की ज़िन्दगी का पूरा-पूरा नमूना पेश कर दे, और सिर्फ़ यही नहीं कि ज़ाती मामलों में उनकी रहनुमाई करके उनको एक-एक करके मुसलमान बनाए

बल्कि इसके साथ ही इस्लाम की तमद्दुनी (सांस्कृतिक), सियासी, मआशी और अख़लाक़ी निज़ाम क़ायम करके सही मानों में एक मुस्लिम सोसाइटी भी वुजूद में ले आए। इसी लिए उसका ख़ता और ग़लती से महफ़ूज़ होना ज़रूरी है, ताकि पूरे भरोसे और यक़ीन के साथ उसकी पैरवी की जा सके और उसकी करनी और कथनी को मुकम्मल तौर से इस्लाम की तालीम और इस्लामियात का मेयार ठहराया जा सके। इसमें शक नहीं कि नबी के कथनों और कामों में तक़लीद और पैरवी के लिहाज़ से मर्तबों व दर्जों का फ़र्क़ ज़रूरी है। कुछ वाजिब और फ़र्ज़ होने के दर्जे में हैं, कुछ पसन्दीदा होने के दर्जे में, और कुछ ऐसे हैं जिनकी हैसियत कमाल (Perfection) तक पहुँचा देने के दर्जे की है। लेकिन मुख़्तसर यह कि नबी की पूरी ज़िन्दगी एक ऐसा नमूना (Model) है जिसको इसी लिए पेश किया गया है कि आदम की औलाद अपने-आपको उसके मुताबिक़ ढालने की कोशिश करे। जो इनसान उस नमूने की मुताबक़त (अनुरूपता) में जितना बढ़ा हुआ होगा वह उतना ही कामिल (पूर्ण) इनसान और मुसलमान होगा, और जो उसकी मुताबक़त में कम-से-कम मर्तबे से भी घट जाएगा, वह अपनी कोताही के लिहाज़ से नाफ़रमान, दुराचारी, गुमराह और ग़ज़ब का मुस्तहिक़ होगा।

मेरे नज़दीक यही आख़िरी गरोह हक़ पर है। मैं क़ुरआन मजीद और अक़्ल की रौशनी में जितना ज़्यादा ग़ौर करता हूँ इस मसलक की सच्चाई पर मेरा यक़ीन बढ़ता जाता है। पैग़म्बरों के जो हालात क़ुरआन मजीद में बयान हुए हैं उनको देखने से मुझको पैग़म्बरी की हक़ीक़त यह नहीं मालूम होती कि ख़ुदा यकायक किसी राह चलते को पकड़कर अपनी किताब पहुँचाने के लिए मुक़र्रर करता हो, या किसी आदमी को इस तौर पर अपना पैग़ाम पहुँचाने के लिए मुक़र्रर करता हो कि वह अपने दूसरे तमाम कारोबार के साथ-साथ एक पैग़म्बरी का काम भी अंजाम दे दिया करे, मानो कि वह एक वक़्ती मज़दूर (Part Time Worker) है जो मुक़र्रर वक़्तों में एक मुक़र्रर काम कर देता है और उस काम को ख़त्म करने के बाद आज़ाद होता है कि जो चाहे करे, इसके बरख़िलाफ़ मैं देखता हूँ कि ख़ुदा ने जब किसी क़ौम में नबी भेजना चाहा है तो ख़ासतौर पर एक आदमी को इसी लिए पैदा किया है कि

वह पैग़म्बरी की ख़िदमत अंजाम दे। उसके अन्दर इनसानियत की वे सबसे बुलन्द ख़ूबियाँ और ऊँचे दर्जे की ज़ेहनी (बौद्धिक) और रूहानी (आध्यात्मिक) ताक़तें पैदा की हैं जो इस अहमतरीन मंसब को सम्भालने के लिए ज़रूरी हैं। पैदाइश के वक़्त से ख़ास अपनी निगरानी में उसकी परवरिश और तरबियत कराई है। नुबूवत देने से पहले भी उसको अख़लाक़ी बुराइयों और गुमराहियों और ग़लत कामों से महफ़ूज़ रखा है, ख़तरों और घातक चीज़ों से उसको बचाया है और ऐसे हालात में उसकी परवरिश की है जिनमें उसकी पैग़म्बरी की क़ाबिलियत और सलाहियत तरक़्क़ी करके अपने मक़सद की तरफ़ बढ़ती रही है, फिर जब वह अपने कमाल को पहुँच गया है तो उसको ख़ास अपने पास से इल्म और क़ुव्वते-फ़ैसला (Judgement) और नूरे-हिदायत (दिव्य प्रकाश) दे करके पैग़म्बरी के मंसब पर मुक़र्रर किया है। और उससे इस तरह काम लिया है कि इस मंसब पर आने के बाद से आख़िरी साँस तक उसकी पूरी ज़िन्दगी इसी काम के लिए वक़्फ़ (समर्पित) रही है। उसके लिए दुनिया में क़ुरआनी आयतों की तिलावत, किताब और हिकमत की तालीम और लोगों को बनाने और सँवारने के सिवा और कोई काम ही नहीं रहा है। रात-दिन, उठते-बैठते, चलते-फिरते हर पल उसको यही धुन रही है कि गुमराहों को सीधे रास्ते पर लाए और सीधे रास्ते पर आ जानेवाले लोगों को तरक़्क़ी की सबसे ऊँची मंज़िलों पर जाने के क़ाबिल बनाए। वह हमेशा हर वक़्त का मुलाज़िम (Whole Time Servant) रहा है, जिसको कभी छुट्टी नहीं मिली और न उसके लिए काम का वक़्त (Working Hours) मुक़र्रर किया गया। उसपर ख़ुदा की तरफ़ से कड़ी निगरानी क़ायम रही है कि ग़लती व ख़ता न करने पाए। मन की ख़ाहिश की पैरवी और शैतानी उकसाहटों से उसकी सख़्त हिफ़ाज़त की गई है। मामलों को बिलकुल उसकी इनसानी अक़्ल और उसकी इनसानी कोशिशों पर नहीं छोड़ दिया गया है बल्कि जहाँ भी उसकी मन की इच्छा या उसके इजतिहाद (जिद्दो-जुहद) ने ख़ुदा की मुक़र्रर की हुई सीधी लाइन से बाल बराबर भी हरकत की है वहीं उसको टोककर सीधा कर दिया गया है। क्योंकि उसकी पैदाइश और उसके भेजने का मक़सद ही यह रहा है कि ख़ुदा के बन्दों को सीधे-सच्चे रास्ते पर चलाए,

अगर वह उस सीधी लाइन से बाल बराबर भी हटता तो आम इनसान मीलों उससे दूर निकल जाते।

यह जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसके लफ़्ज़-लफ़्ज़ पर क़ुरआन मजीद गवाह है।

1. यह बात कि पैग़म्बर पैदाइश से पहले ही पैग़म्बरी के लिए चुन लिए जाते थे, और उनको ख़ास तौर पर इसी मंसब (पद) के लिए पैदा किया जाता था, बहुत-से नबियों के हालात से मालूम होती है। मिसाल के तौर पर हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) की पैदाइश से पहले ही हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को उनकी पैदाइश और पैग़म्बरी की ख़ुशख़बरी दे दी जाती है–

> "और हमने उसे इसहाक़ की ख़ुशख़बरी दी एक नबी नेकूकारों में से, और उसे और इसहाक़ को बरकत दी।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-37 साफ़्फ़ात, आयतें-112, 113)

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के बारे में बचपन ही में हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को मालूम हो जाता है कि अल्लाह उनको चुनने और इबराहीम व इसहाक़ (अलैहि॰) की तरह उनपर अपनी नेमत को पूरी करनेवाला है। हज़रत ज़करिया (अलैहि॰) बेटे के लिए दुआ करते हैं तो उनको हज़रत यह्या (अलैहि॰) की ख़ुशख़बरी इन लफ़्ज़ों में दी जाती है–

> "अल्लाह तुझे यह्या की ख़ुशख़बरी देता है, वह अल्लाह की तरफ़ से एक फ़रमान की तसदीक़ (पुष्टि) करनेवाला बनकर आएगा, उसमें सरदारी और बुज़ुर्गी की शान होगी।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-39)

हज़रत मरयम (अलैहि॰) के पास ख़ासतौर पर फ़रिश्ता भेजा जाता है कि उनको एक नेक तबीयत (बुराइयों से पाक) लड़के की ख़ुशख़बरी दे, और जब उनके गर्भ में पल रहे बच्चे की पैदाइश का वक़्त आता है तो ख़ास अल्लाह तआला की तरफ़ से उनकी ज़चगी के इन्तिज़ाम होते हैं (देखें–क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयतें-22 से 26) फिर उस इसराइली चरवाहे को भी देखिए जिससे 'मुक़द्दस वादी तुवा' में बुलाकर बातें की गईं। वह भी आम चरवाहों

की तरह न था। उसे मिस्र में ख़ासतौर पर फ़िरऔन की ताक़त को मिटाने और बनी-इसराईल को ग़ुलामी से नजात दिलाने के लिए पैदा किया गया। उसको क़त्ल से बचाने के लिए एक ताबूत में रखवाकर दरिया में डलवाया गया। ख़ास उसी फ़िरऔन के घर में पहुँचाया गया जिसको वह तबाह करनेवाला था। उसको ऐसी प्यारी सूरत दी गई कि फ़िरऔन के घरवालों के दिल में घर कर ले—

"मैंने अपनी तरफ़ से तुझपर मुहब्बत डाल दी।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ता॰हा॰, आयत-39)

उसके मुँह को सारी औरतों के दूध से रोक दिया गया यहाँ तक कि वह फिर अपनी माँ की गोद में पहुँच गया, और उसकी परवरिश का इन्तिज़ाम ख़ास अल्लाह की निगरानी में हुआ।

"और ऐसा इन्तिज़ाम किया कि तू मेरी निगरानी में पाला जाए।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ता॰हा॰, आयत-39)

ये कुछ मिसालें हैं जिनसे मालूम होता है कि पैग़म्बर (अलैहि॰) ख़ासतौर पर पैग़म्बरी ही के लिए पैदा किए जाते थे।

2. फिर देखिए कि इस तरह जिन लोगों को पैदा किया जाता है वे आम इनसानों की तरह नहीं होते, बल्कि ग़ैर-मामूली क़ाबिलियतों के साथ वुजूद में आते हैं। उनका स्वभाव बहुत ही पवित्र होता है। उनके ज़ेहन का साँचा ऐसा होता है कि उससे जो बात निकलती है, सीधी-सीधी निकलती है। ग़लत-अन्देशी और ग़लत काम करने की ताक़त ही उनमें नहीं होती। वे फ़ितरी तौर पर ऐसे बनाए जाते हैं कि बिना इरादा और बिना किसी ग़ौर-फ़िक्र के सिर्फ़ अपनी सहजबुद्धि और अन्तर्ज्ञान (Intuition) से उन सही नतीजों पर पहुँच जाते हैं जिनपर दूसरे इनसान ग़ौर-फ़िक्र के बाद भी नहीं पहुँच सकते। उनके इल्म व ज्ञान अपनी कोशिश से हासिल किए हुए नहीं होते बल्कि फ़ितरी और ख़ुदा की तरफ़ से दिए हुए होते हैं। सच और झूठ, सही और ग़लत का फ़र्क़ उनके फ़ितरत में रख दिया जाता है। वे फ़ितरी तौर से सही सोचते हैं, सही बोलते हैं, सही अमल करते हैं। मिसाल के तौर

पर हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) को देखिए। यूसुफ़ (अलैहि॰) का ख़ाब सुनते ही उनके दिल में खटक पैदा हो जाती है कि इस बच्चे को उसके भाई जीने नहीं देंगे। यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाई उनको खेल के लिए ले जाना चाहते हैं तो हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) न सिर्फ़ उनकी बुरी नीयत को भाँप जाते हैं बल्कि उनको ठीक वह बहाना भी मालूम हो जाता है जो बाद में वे बनानेवाले थे। फ़रमाते हैं–

"और मुझे अन्देशा है कि कहीं इसे भेड़िया न फाड़ खाए, जबकि तुम उससे ग़ाफ़िल हो।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-13)

फिर जब यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाई ख़ून से सना हुआ कुर्ता लाकर दिखाते हैं तो हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) देखकर कहते हैं–

"बल्कि तुम्हारे नफ़्स (मन) ने तुम्हारे लिए एक बड़े काम को आसान बना दिया।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-18)

इसी तरह जब यूसुफ़ (अलैहि॰) के भाई मिस्र से वापस आकर कहते हैं कि आपके बेटे ने चोरी की है और यक़ीन दिलाने के लिए यहाँ तक कहते हैं कि उस बस्ती के लोगों से पूछ लीजिए जहाँ से हम आ रहे हैं तो हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) फिर वही जवाब देते हैं कि यह तुम्हारे मन का धोखा है। बेटों को फिर मिस्र भेजते हैं और यह कहते हैं–

"जाकर यूसुफ़ और उसके भाई की कुछ टोह लगाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-87)

और जब उनके बेटे हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की क़मीज़ लेकर मिस्र से चलते हैं तो उनको दूर ही से हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) की ख़ुशबू आने लगती है। इन बातों से मालूम होता है कि पैग़म्बरों की नफ़सी और रूहानी ताक़तें कितनी ग़ैर-मामूली होती हैं। यह सिर्फ़ हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) की ही ख़ासियत नहीं, सारे नबियों का यही हाल है। हज़रत यह्या (अलैहि॰) के बारे में कहा गया है–

"हमने उसे बचपन ही में 'हुक्म' से नवाज़ा। और अपनी तरफ़ से उसको नर्मदिली और पाकीज़गी अता की।"

(क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयतें-12, 13)

हज़रत ईसा (अलैहि॰) की ज़बान से पालने में कहलवाया जाता है—

"और मुझे बरकतवाला किया जहाँ भी मैं रहूँ और नमाज़ और ज़कात की पाबन्दी का हुक्म दिया जब तक मैं ज़िन्दा रहूँ और अपनी माँ का हक़ अदा करनेवाला बनाया और मुझको ज़ालिम और अत्याचारी नहीं बनाया।" (क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयतें-31, 32)

नबी (सल्ल॰) के बारे में कहा गया—

"और तुम बेशक अख़लाक़ के बड़े मर्तबे पर हो।"

(क़ुरआन, सूरा-68 क़लम, आयत-4)

ये सब उन पैदाइशी और फ़ितरी कमालात की तरफ़ इशारे हैं जिनको लेकर पैग़म्बर पैदा होते हैं। फिर अल्लाह तआला उनकी इन्हीं फ़ितरी सलाहियतों को तरक़्क़ी देकर मक़सद की तरफ़ ले जाता है यहाँ तक कि उनको वह चीज़ अता करता है जिसको क़ुरआन मजीद में इल्म और हुक्म (फ़ैसले की क़ुव्वत) और हिदायत और मुबय्यिना (वर्णिता) वग़ैरा लफ़्ज़ों से ताबीर किया गया है। हज़रत नूह (अलैहि॰) अपनी क़ौम से कहते हैं—

"और मुझे अल्लाह की तरफ़ से वह कुछ मालूम है जो तुम्हें मालूम नहीं है।" (क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-62)

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को आसमान और ज़मीन की बादशाही का मुशाहदा (अवलोकन) करा दिया जाता है। (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-75) और जब वे इस मुशाहदे से यक़ीनी इल्म लेकर पलटते हैं तो अपने बाप से कहते हैं—

"अब्बा-जान मेरे पास एक ऐसा इल्म आया है जो आपके पास नहीं आया। आप मेरे पीछे चलें, मैं आपको सीधा रास्ता बताऊँगा।"

(क़ुरआन, सूरा-19 मरयम, आयत-43)

हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) के बारे में कहा गया है—

"बेशक वह हमारी दी हुई तालीम से इल्मवाला था, मगर अकसर लोग मामले की हक़ीक़त को जानते नहीं हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-68)

हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) के बारे में फ़रमाया—

"और जब वह अपनी पूरी जवानी को पहुँचा तो हमने उसे फ़ैसले की ताक़त और इल्म अता किया।"

(क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-22)

यही बात हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बारे में भी फ़रमाई (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-2), यही हुक्म और इल्म हज़रत लूत (अलैहि॰) को दिया गया (क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-74), और यही ग़ैर-मामूली इल्म (असाधारण ज्ञान) नबी (सल्ल॰) को भी दिया गया।

"अल्लाह ने तुमपर किताब और हिकमत (तत्वदर्शिता) उतारी है और तुमको वह कुछ बताया है जो तुम्हें मालूम न था।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-113)

"कहो मैं अपने रब की तरफ़ से एक रौशन दलील पर क़ायम हूँ।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-57)

"तुम इनसे साफ़ कह दो कि मेरा रास्ता तो यह है, मैं अल्लाह की तरफ़ बुलाता हूँ, मैं खुद भी पूरी रौशनी में अपना रास्ता देख रहा हूँ और मेरे साथी भी।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-108)

इस इल्म और हुक्म से पैग़म्बर और आम इनसानों के बीच इतना बड़ा फ़र्क़ आ जाता है जितना एक आँखोंवाले और एक अन्धे के बीच होता है।

"मैं तो सिर्फ़ उस वह्य (प्रकाशना) की पैरवी करता हूँ जो मुझपर उतारी जाती है। फिर उनसे पूछो, क्या अन्धा और आँखोंवाला दोनों बराबर हो सकते हैं?" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-50)

इन आयतों में जिस चीज़ का ज़िक्र किया गया है वह सिर्फ़ किताब नहीं है, बल्कि वह एक रौशनी है जो पैग़म्बरों के अन्दर पैदा कर दी जाती है। इसी लिए इसका ज़िक्र किताब से अलग किया गया है, और इसे नबियों की ख़ूबी के तौर पर बयान किया गया है। वे इस रौशनी से सच्चाइयों का अपनी आँखों से मुशाहदा करते हैं। इसी से ग़लत और सही में फ़र्क़ करते हैं। इसी से मामलों में फ़ैसला करते हैं और इसी से उन मामलों पर नज़र डालते हैं

जो उनके सामने पेश होते हैं। इस्लाम के आलिमों ने इसी चीज़ का नाम वह्ये-ख़फ़ी रखा है, यानी वह अन्दरूनी हिदायत और अक़्ल व शुऊर जो हर वक़्त उन बुज़ुर्गों को हासिल रहता था और जिससे वे हर मौक़े पर काम लेते थे। दूसरे लोग ग़ौर-फ़िक्र के बाद भी जिन बातों की तह को नहीं पहुँच सकते और जिन मामलों में हक़ और सच्चाई मालूम नहीं कर सकते, उनमें नबी की नज़र अल्लाह की दी हुई रौशनी और बसीरत (दूरदर्शिता) के ज़ोर से एक ही पल में तह तक पहुँच जाती थी।

3. इसके बाद क़ुरआन मजीद हमको बताता है कि अल्लाह तआला ने पैग़म्बरों को न सिर्फ़ हिकमत और फ़ैसले की ताक़त और ग़ैर-मामूली सूझ-बूझ और दानाई (बुद्धिमत्ता) दी है, बल्कि इसके साथ ही वह हमेशा उनपर ख़ास नज़र रखता है, ग़लतियों से उनकी हिफ़ाज़त करता है, गुमराहियों से उनको बचाता है। चाहे वे इनसानी असर के तहत हों या शैतानी उकसाहटों के तहत या ख़ुद उनके अपने मन से पैदा हों। यहाँ तक कि अगर इनसानी कमज़ोरी की वजह से कभी वे अपनी जिद्दो-जुहद में भी ग़लती करते हैं तो अल्लाह तुरन्त उनकी इसलाह (सुधार) कर देता है। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि०) के क़िस्से में देखिए। जब क़रीब था कि मिस्र के हाकिम की बीवी उनको अपने जाल में फँसा ले, अल्लाह ने अपनी 'बुरहान' (रौशन दलील) दिखाकर उनको बदकारी से महफ़ूज़ कर दिया।

> "वह उसकी तरफ़ बढ़ी और यूसुफ़ भी उसकी तरफ़ बढ़ता, अगर अपने रब की बुरहान (दलील) न देख लेता। ऐसा हुआ, ताकि हम उससे बदी और बेहयाई को दूर कर दें, हक़ीक़त में वह हमारे चुने हुए बन्दों में से था।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-24)

हज़रत मूसा और हारून (अलैहि०) को जब फ़िरऔन के पास जाने का हुक्म दिया गया तो उन्हें डर हुआ कि कहीं फ़िरऔन उनपर ज़्यादती न करे। इसपर अल्लाह तआला ने कहा कि कुछ ख़ौफ़ न करो मैं तुम्हारे साथ हूँ और सब कुछ सुन और देख रहा हूँ (क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-46), डर इनसान होने की वजह से था। अल्लाह ने उस इनसानी कमज़ोरी को अपनी

वह्य से दूर किया।

हज़रत नूह (अलैहि॰) बेटे को डूबता देखकर चीख़ उठे "ऐ मेरे ख़ुदा! यह मेरा बेटा मेरे घरवालों में से है।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-45)। यह इनसानी कमज़ोरी थी। अल्लाह ने उसी वक़्त यह हक़ीक़त उनपर वाज़ेह कर दी कि वह तेरे नुत्फ़े से हो तो हुआ करे, मगर तेरे 'घरवालों' से नहीं, क्योंकि उसका अमल अच्छा नहीं है। इनसान होने की वजह से बेटे की मुहब्बत के जोश में पल-भर के लिए नबी की नज़र से इस हक़ीक़त को छिपा दिया था कि हक़ के मामले में बाप, बेटा, भाई, कोई चीज़ नहीं है। अल्लाह ने वह्य के ज़रिए से उसी वक़्त आँखों पर से परदा उठा दिया और हज़रत नूह (अलैहि॰) मुत्मइन हो गए।

नबी (सल्ल॰) के साथ भी अनेकों बार ऐसी घटनाएँ पेश आ चुकीं हैं। अपनी फ़ितरी रहमत और मेहरबानी, ग़ैर-मुस्लिमों को मुसलमान बनाने की हिर्स, ग़ैर-मुस्लिमों की दिलजोई, लोगों के छोटे-से-छोटे एहसान का बदला देने की कोशिश, मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) के दिलों में ईमान की रूह फूँकने की ख़ाहिश और कभी-कभी इनसानी कमज़ोरी की वजह से जब कभी नबी (सल्ल॰) से कोई ख़ता हुई है, वह्य (क़ुरआन की आयत) से उसका सुधार कर दिया गया है।

"त्योरी चढ़ाई और बेरुख़ी बरती, इस बात पर कि वह अन्धा उसके पास आ गया।" (क़ुरआन, सूरा-80 अ-ब-स, आयत-1)

"किसी पैग़म्बर के लिए यह शोभा नहीं देता कि उसके पास क़ैदी हों।" (क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-67)

"(ऐ नबी!) अल्लाह तुम्हें माफ़ करे, तुमने क्यों उन्हें छूट दे दी।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-43)

"(ऐ नबी!) चाहे ऐसे लोगों के लिए माफ़ी की दरख़ास्त करो या न करो, अगर तुम सत्तर बार भी उन्हें माफ़ कर देने की दरख़ास्त करोगे तो अल्लाह उन्हें हरगिज़ माफ़ न करेगा।"

(क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-80)

"और आइन्दा उनमें से जो कोई मरे उसकी जनाज़े की नमाज़ भी तुम हरगिज़ न पढ़ना।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-84)

"ऐ नबी! तुम क्यों उस चीज़ को हराम करते हो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए हलाल की है?" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-1)

ये सब आयतें इसी बात की गवाही देती हैं। लोग इन आयतों को इस बात के सुबूत में पेश करते हैं कि नबी (सल्ल॰) से ग़लतियाँ हो जाती थीं और आप (सल्ल॰) ग़लतियों से बचे हुए न थे। ख़ास तौर पर अहले-क़ुरआन को तो इन आयतों के ज़रिए से अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की ग़लतियाँ पकड़ने में ख़ास मज़ा आता है। लेकिन अस्ल में यही तो वे आयतें हैं जिनसे बिलकुल वाज़ेह तौर से यह साबित होता है कि अपने नबी को ग़लतियों से बचाने और उसकी ज़िन्दगी को ठेठ हक़ के मेयार पर क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी अल्लाह ने सीधे तौर पर अपने ज़िम्मे ले रखी थी। और यह हक़ीक़त सिर्फ़ ऊपर बयान की गई आयतों ही में बयान नहीं हुई है बल्कि क़ुरआन मजीद में अनेकों जगहों पर अल्लाह ने इसे उसूली हैसियत से भी बयान किया है। मिसाल के तौर पर फ़रमाया—

"(ऐ नबी!) अगर अल्लाह का फ़ज़्ल तुमपर न होता और उसकी रहमत तुम्हारे साथ-साथ न होती तो उनमें से एक गरोह ने तो तुम्हें ग़लतफ़हमी में डाल देने का फ़ैसला कर ही लिया था, हालाँकि हक़ीक़त में वह ख़ुद अपने सिवा किसी को ग़लतफ़हमी में मुब्तला नहीं कर रहे थे और तुम्हारा कोई नुक़सान न कर सकते थे। अल्लाह ने तुमपर किताब और हिकमत उतारी है और तुमको वह कुछ बताया है जो तुम्हें मालूम नहीं था।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-113)

"(ऐ नबी!) उन लोगों ने इस कोशिश में कोई कसर उठा नहीं रखी कि तुम्हें फ़ितने में डालकर उस वह्‌य से फेर दें जो हमने तुम्हारी तरफ़ भेजी है ताकि तुम हमारे नाम पर अपनी तरफ़ से कोई बात गढ़ो, अगर तुम ऐसा करते तो वे ज़रूर तुम्हें अपना दोस्त बना लेते। और अगर हम तुम्हें मज़बूत न रखते तो तुम उनकी तरफ़ कुछ झुक

जाते।" (क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयतें-73, 74)

"और (ऐ नबी!) तुमसे पहले हमने न कोई पैग़म्बर ऐसा भेजा है न नबी जिसके साथ यह मामला पेश न आया हो कि जब उसने तमन्ना की, शैतान उसकी तमन्ना में ख़लल-अन्दाज़ हो गया। इस तरह जो कुछ भी शैतान ख़लल-अन्दाज़ियाँ करता है, अल्लाह उनको मिटा देता है। और अपनी आयतों को पक्का कर देता है।"

(क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-52)

इन उसूली बयानों से और ऊपर की सच्ची मिसालों से साफ़ मालूम होता है कि अल्लाह ने अपने पैग़म्बर की ज़िन्दगी को ठीक-ठीक मेयारे-मतलूब (वांछित आदर्श) पर क़ायम रखने की ज़िम्मेदारी ख़ुद अपने ऊपर ली है और उसने इस बात का सख़्त एहतिमाम किया है कि नबी से जो ग़लती भी हो जाए उसकी फ़ौरन इसलाह करे, चाहे वह ग़लती किसी ज़ाती मामले में हो या आम मामलों में। फिर अगर उसूली तौर पर यह बात मान ली जाए तो इसी से यह भी साबित हो जाता है कि नबी के जिन कामों पर अल्लाह ने पकड़ नहीं की है वे सब-के-सब अल्लाह के मेयारे-मतलूब पर पूरे उतरते हैं और मानो उनपर ख़ुद अल्लाह ही की तसदीक़ की मुहर लगी है।

यहाँ तक जो कुछ बयान किया गया है वह इस बात को साफ़ कर देने के लिए बिलकुल काफ़ी है कि पैग़म्बरी की हक़ीक़त यह नहीं है कि एक इनसान, जो तमाम हैसियतों से दूसरे इनसानों जैसा एक इनसान हो, एक उम्र को पहुँचने के बाद यकायक ख़ुदा की तरफ़ से वह्य उतरने के लिए चुन लिया जाए, और उस किताब के सिवा जो उसपर उतारी गई हो और किसी बात में भी उसकी राय, उसके ख़यालात, उसके अमल और काम, उसके अहकाम और उसके फ़ैसले ग़ैर-नबी इनसानों से नुमायाँ न हों, जैसा कि नाम-निहाद (तथाकथित) अहले-क़ुरआन का गुमान है। या यह कि उसमें और आम इनसानों में सिर्फ़ इतना ही फ़र्क़ हो कि किताब के उतरने के साथ-साथ उसको किताब के हुक्मों की अमली तफ़सीलें भी बता दी गई हों और उस ख़ास मंसबी हैसियत से नज़र हटाकर वह सिर्फ़ आम अमीरों (हाकिमों) जैसा एक अमीर, और आम जजों जैसा एक जज और आम

लीडरों जैसा एक लीडर हो जैसा कि मौलाना असलम जैराजपुरी का ख़याल है। इसी तरह नुबूवत की हक़ीक़त यह भी नहीं है कि नबी के इनसान होने पर नुबूवत रुकावट होती है और उसके बाद भी नबी के इनसान होने की हैसियत और उसकी नुबूवत दोनों अलग-अलग रहती हों। यहाँ तक कि हम उसकी ज़िन्दगी को दो अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर सिर्फ़ उस हिस्से को फ़रमाँबरदारी और पैरवी के लिए चुन सकें जो नुबूवत से ताल्लुक़ रखता है। जैसा कि हमारे दोस्त चौधरी ग़ुलाम अहमद साहब परवेज़ का ख़याल है। ये तीनों ख़याल बेअस्ल हैं। इनके बरख़िलाफ़ क़ुरआन मजीद से नुबूवत की हक़ीक़त पर जो रौशनी पड़ती है उससे मालूम होता है कि नबी अपनी पैदाइश और परवरिश के मरहलों से गुज़रने के बाद नुबूवत के लिए चुना नहीं जाता है बल्कि वह नुबूवत के काम के लिए ही पैदा किया जाता है। वह अगरचे इनसान ही होता है और उन सारी हदों से महदूद हुआ करता है जो अल्लाह ने इनसानी फ़ितरत के लिए मुक़र्रर की हैं, लेकिन उन हदों के अन्दर उसके इनसान होने की हैसियत आख़िरी और इन्तिहा दर्जे की कामिल और मुकम्मल इनसानियत होती है। जिसमें वे सारी क़ुव्वतें मुकम्मल तौर पर मौजूद होती हैं जो एक इनसान को ज़्यादा-से-ज़्यादा हासिल होनी मुमकिन हैं। उसके जिस्मानी, नफ़सानी (मानसिक) और अक़्ली व रूहानी ताक़तें सन्तुलन और बराबरी (Balance and Moderation) के आख़िरी छोर पर होती हैं। उसके इल्म व समझ-बूझ की पहुँच इतनी लतीफ़ (सूक्ष्म) होती है कि वह बिना किसी सोच-विचार के अपने विजदान (जानने और दरयाफ़्त करने की क़ुव्वत) से उस ख़ुदाई इलहाम को पा लेता है जिसकी तरफ़ इस आयत में इशारा किया गया है—

> "फिर उसकी बदी और उसकी परहेज़गारी उसके दिल में डाल दी।" (क़ुरआन, सूरा-91 शम्स, आयत-8)

उसकी फ़ितरत इतनी सही होती है कि वह किसी बाहरी तालीम और तरबियत के बिना ही अपने फ़ितरी लगाव से बुराई का रास्ता छोड़कर परहेज़गारी का रास्ता अपनाता है। उसका दिल इतना नर्म होता है कि वह हर मामले में जो उसके सामने आए उस ख़ुदाई हिदायत को ठीक-ठीक समझ

लेता है जिसकी तरफ़ इस आयत में इशारा है–

"और (नेकी और बदी के) दोनों नुमायाँ रास्ते क्या उसे (नहीं) दिखा दिए?" (क़ुरआन, सूरा-90 बलद, आयत-10)

उसके दिल की सलामती और उसकी फ़ितरत की सेहत उसको ख़ुद-ब-ख़ुद उन रास्तों से हटा देती है जो ख़ुदा की ख़ुशनूदी के ख़िलाफ़ हैं। और वह आप-से-आप उन रास्तों पर चलता है जो ख़ुदा की मर्ज़ी के ठीक मुताबिक़ हैं। इनसान होने का कामिल और मुकम्मल दर्जा यही है जिसके साथ वह सही मानों में व्यावहारिक रूप से ख़ुदा का नाइब होता है और यही चीज़ है जो अपनी पुख़्तगी और अपने कमाल को पहुँच जाने के बाद आम हिदायत के मंसब पर विराजमान की जाती है, अल्लाह की तरफ़ से इल्म की और ज़्यादा रौशनी पाकर रौशन चिराग़ बनती है, आम इनसानों की भलाई के लिए तालीमात और अहकाम के उतरने की जगह ठहरती है, और इस्तिलाह (परिभाषा) में नुबूवत के नाम से जानी जाती है। इसलिए यह समझना सही नहीं है कि नुबूवत एक अरज़ (ख़ुद से क़ायम न होकर दूसरी चीज़ की वजह से क़ायम) है जो एक ख़ास वक़्त में पैग़म्बर के इनसानियत के जौहर (हक़) पर ज़ाहिर होती है, बल्कि हक़ीक़त यह है कि वही मुकम्मल इनसानियत का जौहर है जो नुबूवत की सलाहियत के साथ पैदा किया जाता है और अपने मक़सद की तरफ़ तरक़्क़ी करते-करते आख़िरकार नबी बना दिया जाता है। नुबूवत का मंसब ऐसा नहीं है कि एक इनसान था जो वायसराय (Viceroy) बना दिया गया, यहाँ तक कि अगर उसकी जगह दूसरा इनसान होता तो वह भी उसी तरह वायसराय बनाया जा सकता था, बल्कि अस्ल में पैग़म्बरी एक पैदाइशी चीज़ है, और नबी की निजी हैसियत ही उसकी नबवी हैसियत है। फ़र्क़ अगर है तो सिर्फ़ इतना है कि पैग़म्बर बनाए जाने से पहले उसकी नबीवाली हैसियत फ़ितरी तौर पर होती है और पैग़म्बर बनाए जाने के बाद अमली तौर पर हो जाती है। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे मीठा फल कि वह अपनी ज़ात में ख़ुद मीठा फल ही पैदा हुआ है, लेकिन उसकी मिठास पक जाने की एक ख़ास हद पर पहुँचकर ही ज़ाहिर होती है।

अब इन आयतों का मतलब अच्छी तरह समझ में आ सकता है जो अल्लाह ने नुबूवत और नबी की ज़ात के हक़ में बहुत-सी जगहों पर बयान की हैं। मैं बात को साफ़ करने के लिए उन आयतों को ख़ास तरतीब के साथ जमा करके नक़्ल करता हूँ—

1. "मगर अल्लाह का यह तरीक़ा नहीं है कि तुम लोगों को ग़ैब (परोक्ष) की ख़बर दे दे, (ग़ैब की बातें बताने के लिए तो) अल्लाह अपने पैग़म्बरों में से जिसको चाहता है चुन लेता है। इसलिए (ग़ैब की बातों के बारे में) अल्लाह और उसके पैग़म्बर पर ईमान रखो।"
(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-179)
2. "हमने जो रसूल (पैग़म्बर) भी भेजा है इसी लिए भेजा है कि उसकी फ़रमाँबरदारी की जाए ख़ुदा की मर्ज़ी[1] की बिना पर।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-64)
3. "जिसने पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी की उसने अस्ल में ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी की।" (क़ुरआन सूरा-4 निसा, आयत-80)
4. "क़सम है तारे की जब वह डूब गया! तुम्हारा दोस्त न भटका है न बहका है, वह अपने नफ़्स की ख़ाहिश से नहीं बोलता। यह तो एक वह्य है जो उसपर उतारी जाती है।"
(क़ुरआन, सूरा-53 नज्म, आयतें-1-4)
5. "मैं तो सिर्फ़ उस वह्य की पैरवी करता हूँ जो मुझपर उतारी जाती है।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-50)
6. "हक़ीक़त में तुम लोगों के लिए अल्लाह के पैग़म्बर में एक बेहतरीन नमूना था।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-21)
7. "(ऐ नबी! लोगों से) कह दो कि अगर तुम सचमुच अल्लाह से मुहब्बत रखते हो तो मेरी पैरवी करो, अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-31)
8. "ईमान लानेवालों का काम तो यह है कि जब वे अल्लाह और

---

1. यानी पैग़म्बर अपने-आपमें फ़रमाँबरदारी के क़ाबिल नहीं होता बल्कि ख़ुदा की मर्ज़ी की बिना पर फ़रमाँबरदारी के क़ाबिल होता है।

उसके रसूल की तरफ़ बुलाए जाएँ ताकि रसूल उनके मुक़द्दमे का फ़ैसला करे तो वे कहें कि हमने सुना और फ़रमाँबरदारी की। ऐसे ही लोग कामयाबी पानेवाले हैं।" (क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-51)

"उसकी फ़रमाँबरदारी करोगे तो ख़ुद ही हिदायत पाओगे।"
(क़ुरआन, सूरा-24 नूर, आयत-54)

"नहीं (ऐ मुहम्मद!) तुम्हारे रब की क़सम! ये कभी मोमिन नहीं हो सकते जब तक कि अपने आपसी इख़्तिलाफ़ में ये तुमको फ़ैसला करनेवाला न मान लें। फिर जो कुछ तुम फ़ैसला करो, उसपर अपने दिलों में कोई तंगी न महसूस करें बल्कि पूरी तरह मान लें।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-65)

"किसी ईमानवाले मर्द और किसी ईमानवाली औरत को यह हक़ नहीं है कि जब अल्लाह और उसका पैग़म्बर किसी मामले का फ़ैसला कर दे तो फिर उसे अपने उस मामले में ख़ुद फ़ैसला करने का इख़्तियार हासिल रहे, और जो कोई अल्लाह और उसके पैग़म्बर की नाफ़रमानी करे तो वह खुली गुमराही में पड़ गया।"
(क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-36)

इन आयतों पर ग़ौर कीजिए तो सारी हक़ीक़त आपपर खुल जाएगी।

1. पहली आयत में नबी और आम इनसानों के बीच फ़र्क़ ज़ाहिर किया गया है और बताया गया है कि पैग़म्बर पर ईमान लाना क्यों ज़रूरी है। अल्लाह का वादा है कि अपने ग़ैब[1] का इल्म हर इनसान पर अलग-अलग

1. ग़ैब, यानी वे ग़ैर-महसूस हक़ीक़तें जिनसे वाक़िफ़ हुए बग़ैर दुनिया में इनसानी ज़िन्दगी के लिए कोई सही तरीक़ा और निज़ाम नहीं बन सकता। मिसाल के तौर पर यह कि इनसान की असलियत क्या है? वह आज़ाद है या किसी का ग़ुलाम? ग़ुलाम है तो किसका ग़ुलाम है? अपने हाकिम से उसके ताल्लुक़ की नौइयत क्या है? उसे कभी अपने हाकिम को जवाब देना है या नहीं? जवाब देना है तो कहाँ? किस शक्ल में? किस मेयार पर? किन मामलों में? और उस जवाबदेही में कामयाब या नाकाम होने का क्या नतीजा होगा? इन सवालों का जब तक कोई जवाब और वह भी क़यासी और गुमानी जवाब नहीं बल्कि इल्मी और यक़ीनी जवाब मालूम न हो इनसानी ज़िन्दगी के लिए कोई स्कीम (योजना) नहीं बन सकती। और यही वह इल्म है जिसको अल्लाह तआला इस आयत में 'ग़ैब के इल्म' से ताबीर (परिभाषित) कर रहा है।

ज़ाहिर नहीं करता, बल्कि अपने बन्दों में से किसी ख़ास बन्दे पर ज़ाहिर करता है। इसलिए आम इनसानों पर लाज़िम है कि वे उस बन्दे पर ईमान लाएँ।

2. दूसरी आयत में बताया गया है कि पैग़म्बर पर ईमान लाने का मक़सद सिर्फ़ यही नहीं है कि उसको ख़ुदा का पैग़म्बर मान लिया जाए, बल्कि इसके साथ पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी भी ज़रूरी है। यह फ़रमाँबरदारी का हुक्म न सिर्फ़ इस आयत में, बल्कि क़ुरआन मजीद में जहाँ-जहाँ भी दिया गया है, बिलकुल आज़ाद है, क़ैद के साथ नहीं है। किसी एक जगह भी यह नहीं बताया गया कि पैग़म्बर की फ़रमाँबरदारी फ़ुलाँ-फ़ुलाँ मामलों में है और उन मामलों के सिवा किसी दूसरे मामले में नहीं है। तो क़ुरआन से मालूम होता है कि ख़ुदा की तरफ़ से उसका पैग़म्बर एक आम हाकिम है। जो हुक्म भी वह दे, ईमानवालों पर उसका मानना लाज़िम है। यह ख़ुद पैग़म्बर के अपने इख़्तियार में है कि ख़ुदा की हिदायतों के मातहत अपनी हुकूमत की ताक़त को ख़ास हदों के अन्दर महदूद कर दे, और उन हदों से बाहर लोगों को राय और अमल की आज़ादी बख़्श दे। लेकिन ईमानवालों को यह हक़ हरगिज़ नहीं दिया गया कि वे ख़ुद पैग़म्बर के इख़्तियार की हदबन्दी कर दें। वे तो बिलकुल ही मातहत और हुक्म के ताबे हैं। अगर पैग़म्बर उनको खेती-बाड़ी, बढ़ईगिरी, लोहारगिरी वग़ैरा के तरीक़ों में से भी किसी ख़ास तरीक़े को अपनाने का हुक्म देता तो उनका फ़र्ज़ यही था कि बे-चूँ-चरा फ़रमाँबरदारी करते।

3. जब फ़रमाँबरदारी बिना शर्त और ग़ैर-महदूद का हुक्म दे दिया गया तो यह इत्मीनान दिलाना भी ज़रूरी था कि नबी की फ़रमाँबरदारी, अपने जैसे एक इनसान की फ़रमाँबरदारी नहीं है, जैसा कि हक़ के इनकारियों का ख़याल था। जो कहते थे—

"यह आदमी आख़िर तुम जैसा इनसान ही तो है?"

(क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-3)

"यह शख़्स कुछ नहीं है मगर एक इनसान तुम्हीं जैसा, इसका

मक़सद यह है कि तुमपर बरतरी हासिल करे।"

(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-24)

"अब अगर तुमने अपने ही जैसे एक इनसान की फ़रमाँबरदारी क़बूल कर ली तो तुम घाटे ही में रहे।"

(क़ुरआन, सूरा-23 मोमिनून, आयत-34)

बल्कि यह अस्ल में ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी है, क्योंकि नबी जो कुछ कहता है ख़ुदा की तरफ़ से कहता है और जो कुछ अमल करता है ख़ुदा की हिदायत के मातहत करता है। वह ख़ुद अपने मन की इच्छा से कोई बात नहीं करता, बल्कि ख़ुदा की वह्य की पैरवी करता है, इसलिए तुमको मुत्मइन हो जाना चाहिए कि उसकी पैरवी में किसी तरह की गुमराही और ग़लत राह पर चलने का कोई ख़तरा नहीं है।

यही बात है जो तीसरी, चौथी और पाँचवीं आयत में बयान की गई है। चौथी और पाँचवीं आयत में जिस चीज़ को वह्य कहा गया है उसके बारे में कहा जाता है कि उससे मुराद अल्लाह की किताब है, और किताब के अलावा कोई वह्य पैग़म्बर पर नहीं उतरती। लेकिन यह ख़याल बिलकुल ग़लत है। क़ुरआन मजीद से साबित है कि पैग़म्बरों पर सिर्फ़ किताब ही नहीं उतारी जाती थी, बल्कि उनकी हिदायत और रहनुमाई के लिए ख़ुदा हमेशा वह्य उतारता रहता था और उसी वह्य की रौशनी में वे सीधे रास्ते पर चलते थे। मामलों में ठीक-ठीक राय क़ायम करते थे और तदबीरें अमल में लाते थे। मिसाल के तौर पर देखिए, नूह (अलैहि॰) तूफ़ान को रोकने के लिए अल्लाह की निगरानी में और उसकी वह्य के मातहत कश्ती बनाते हैं—

"और हमारी निगरानी में हमारी वह्य के मुताबिक़ एक कश्ती बनानी शुरू कर दो।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-37)

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को ज़मीन-आसमान की बादशाही का नज़ारा कराया जाता है (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-75) और मुर्दों को ज़िन्दा करने की कैफ़ियत दिखाई जाती है। (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-260) हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰) को ख़्राबों की ताबीर बताई जाती है—

"यह उन इल्मों में से है जो मेरे रब ने मुझे दिए हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-37)

हज़रत मूसा (अलैहि॰) से तूर पर्वत पर बातें की जाती हैं। पूछा जाता है कि यह तुम्हारे हाथ में क्या है? वे कहते हैं कि मेरी लाठी है, इससे बकरियाँ चराता हूँ। हुक्म होता है कि इसको फेंक दो। जब लाठी अज़दहा बन जाती है और हज़रत मूसा (अलैहि॰) डरकर भागते हैं तो कहा जाता है—

"मूसा! पलट आ और ख़ौफ़ न कर, तू बिलकुल महफ़ूज़ है।"

(क़ुरआन, सूरा-28 क़सस, आयत-31)

फिर हुक्म दिया जाता है—

"फ़िरऔन के पास जाओ, वह सरकश हो गया है।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-24)

वे अपनी मदद के लिए हारून (अलैहि॰) को माँगते हैं और यह दरख़ास्त क़बूल की जाती है। दोनों भाई फ़िरऔन के पास जाते हुए डरते हैं तो कहा जाता है—

"डरो मत, मैं तुम्हारे साथ हूँ, सब कुछ सुन रहा हूँ और देख रहा हूँ।" (क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-46)

फ़िरऔन के दरबार में साँपों को देखकर हज़रत मूसा (अलैहि॰) डरते हैं तो वह्य आती है—

"मत डर, तू ही ग़ालिब रहेगा।"

(क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-68)

जब फ़िरऔन पर सारी हुज्जत पूरी हो जाती है तो उनको हुक्म दिया जाता है—

"रातों-रात मेरे बन्दों को लेकर निकल जाओ, तुम्हारा पीछा किया जाएगा।" (क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, आयत-52)

समुद्र पर पहुँचते हैं तो फ़रमान आता है—

"मार अपनी लाठी समुद्र पर।" (क़ुरआन, सूरा-26 शुअरा, आयत-63)

क्या इनमें से कोई वह्य भी ऐसी है जो किताब की सूरत में हिदायतनामे के लिए नाज़िल हुई हो? ये मिसालें इस बात के सुबूत में काफ़ी हैं कि पैग़म्बरों की तरफ़ अल्लाह तआला मुतवज्जह रहता है और हर ऐसे मौक़े पर जहाँ इनसानी सोच और राय की ग़लती करने की सम्भावना हो अपनी वह्य से उनकी रहनुमाई करता रहता है और यह वह्य उस वह्य के अलावा होती है जो आम हिदायत के लिए उनके वास्ते से भेजी जाती है और किताब में दर्ज की जाती है ताकि लोगों के लिए ख़ुदाई हिदायतनामे और अमली दस्तूर का काम दे।

ऐसी ही ग़ैर-मत्लू (जिसको पढ़ा न जा सके) और छिपी हुई वह्य नबी (सल्ल॰) पर नाज़िल होती थी, जिसकी तरफ़ क़ुरआन मजीद में बहुत-सी जगहों पर इशारे किए गए हैं। प्यारे नबी (सल्ल॰) ने पहले बैतुल-मक़दिस को क़िबला बनाया था। इसके बारे में कोई भी हुक्म अल्लाह की किताब में नहीं आया। मगर जब इस क़िबले को बदलकर बैतुल-हराम (ख़ाना-काबा) को क़िबला बनाने का हुक्म दिया गया तो उस वक़्त कहा गया—

> "पहले जिस तरफ़ तुम मुँह करते थे, उसको तो हमने सिर्फ़ यह देखने के लिए क़िबला ठहराया था कि कौन पैग़म्बर की पैरवी करता है और कौन उल्टा फिर जाता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-143)

इससे मालूम हुआ कि पहले जो बैतुल-मक़दिस को क़िबला बनाया गया था, वह वह्य की बिना पर था।

उहुद की जंग के मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों से कहा कि अल्लाह तआला तुम्हारी मदद के लिए फ़रिश्ते भेजेगा। बाद में अल्लाह ने आप (सल्ल॰) की इस बात का ज़िक्र क़ुरआन में इस तरह फ़रमाया—

> "यह बात अल्लाह नें तुम्हें इसलिए बता दी है कि तुम ख़ुश हो जाओ।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-126)

साफ़ ज़ाहिर है कि यह वादा अल्लाह की तरफ़ से था।

उहुद की जंग के बाद अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने बद्र की दूसरी जंग

के लिए लोगों को निकलने का हुक्म दिया। यह हुक्म क़ुरआन में कहीं नहीं आया। मगर अल्लाह ने बाद में तसदीक़ की कि यह भी उसी की तरफ़ से था।

"अल्लाह ईमानवालों के अज्र को बरबाद नहीं करता। (ऐसे ईमानवालों के अज्र को) जिन्होंने ज़ख़्म खाने के बाद भी अल्लाह और पैग़म्बर की पुकार पर लब्बैक (मैं हाज़िर हूँ) कहा।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयतें-171, 172)

बद्र की जंग के मौक़े पर नबी (सल्ल॰) के मदीना से निकलने का ज़िक्र इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

"तेरा रब तुझे हक़ के साथ तेरे घर से निकाल लाया था।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-5)

घर से निकलने का हुक्म क़ुरआन में नहीं आया, मगर बाद में अल्लाह ने तसदीक़ कर दी कि यह निकलने का हुक्म भी उसी का था न कि अपनी राय से।

फिर ठीक जंग के मौक़े पर अल्लाह ने अपने नबी (सल्ल॰) को ख़्वाब में दिखाया—

"और याद करो वह वक़्त जबकि (ऐ नबी!) ख़ुदा उनको तुम्हारे ख़्वाब में थोड़ा दिखा रहा था।"

(क़ुरआन, सूरा-8 अनफ़ाल, आयत-43)

मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) ने अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) के सदक़ों के बँटवारे पर नाक-भौं चढ़ाई तो अल्लाह ने इस हक़ीक़त पर से पर्दा उठाया कि यह बँटवारा ख़ुद ख़ुदा के कहने पर अमल में आया था—

"क्या अच्छा होता कि अल्लाह और पैग़म्बर ने जो कुछ भी उन्हें दिया था उसपर वे राज़ी रहते।" (क़ुरआन, सूरा-9 तौबा, आयत-59)

हुदैबिया की सुलह (संधि) के मौक़े पर सारे सहाबा (रज़ि॰) सुलह के ख़िलाफ़ थे। और सुलह की शर्तें हर आदमी को नाक़ाबिले-क़बूल नज़र आती

थीं लेकिन ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल०) ने उनको क़बूल किया, और अल्लाह ने बाद में तसदीक़ की कि यह सुल्ह उसी की तरफ़ से थी।

"ऐ नबी! हमने तुमको खुली फ़त्ह दे दी।"

(क़ुरआन, सूरा-48 फ़त्ह, आयत-1)

आयतों को आगे-पीछे रखकर देखने से इस तरह की और भी बहुत-सी मिसालें मिल सकती हैं। मगर यहाँ इसी विषय पर ज़्यादा ज़ोर देना अस्ल मक़सद नहीं है। सिर्फ़ यह साबित करना मक़सद है कि अल्लाह का ताल्लुक़ अपने पैग़म्बरों के साथ कोई वक़्ती ताल्लुक़ नहीं है कि जब कभी उसको अपने बन्दों तक कोई पैग़ाम पहुँचाना हो तो बस उसी वक़्त यह ताल्लुक़ भी हो और उसके बाद टूट जाए। बल्कि अस्ल में अल्लाह जिस आदमी को अपनी पैग़म्बरी के लिए चुनता है उसकी तरफ़ वह हमेशा एक ख़ास तवज्जोह के साथ ध्यान रखे रहता है और हमेशा अपनी वह्य से उसकी हिदायत और रहनुमाई करता रहता है ताकि वह अपनी ज़िन्दगी में ठीक-ठीक सीधे-सच्चे रास्ते पर चलता रहे, और उससे कोई ऐसी बात और काम न होने पाए जो ख़ुदा की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हो। सूरा-53 नज्म की शुरू की आयतों में जो कुछ बयान हुआ है वह अस्ल में इसी हक़ीक़त का इज़हार है। और जैसा कि मैं इस लेख के पहले हिस्से में बता चुका हूँ, यह बात भी क़ुरआन मजीद ने खोलकर बयान कर दी है कि पैग़म्बरों पर हमेशा अल्लाह की निगरानी रहती है, उनको ग़लत रास्ते पर चलने से महफ़ूज़ रखा जाता है, और अगर इनसानी कमज़ोरी की वजह से उनसे कभी कोई भूल होती है, या वह्ये-ख़फ़ी के बारीक इशारे को समझने में वे कभी ग़लती करते हैं, या अपने इज्तिहाद (राय) से कोई ऐसी रविश इख़्तियार कर जाते हैं जो ख़ुदा की मर्ज़ी से बाल बराबर भी हटी हुई हो तो अल्लाह तआला फ़ौरन उनकी इसलाह करता है और तंबीह करके सीधे रास्ते पर ले आता है। क़ुरआन मजीद में प्यारे नबी (सल्ल०) और दूसरे नबियों की ख़ताओं और उनपर अल्लाह की तंबीह का जो ज़िक्र आया है, उसका हरगिज़ यह मंशा नहीं है कि लोगों के दिलों से पैग़म्बरों के हुक्मों की फ़रमाँबरदारी का भरोसा उठ जाए और लोग यह समझने लगें कि जब पैग़म्बर भी हमारी ही तरह (अल्लाह की पनाह!)

ग़लतकार हैं तो उनके हुक्मों की फ़रमाँबरदारी और उनके तरीक़े की पैरवी पूरे इत्मीनान के साथ कैसे की जा सकती है, बल्कि इस ज़िक्र से मक़सद यह बताना है कि अल्लाह ने पैग़म्बरों को अपनी नफ़्स (इच्छा) की पैरवी करने या अपनी राय और इनसानी राय पर चलने के लिए आज़ाद नहीं छोड़ दिया है। वे चूँकि उसकी तरफ़ से उसके बन्दों की रहनुमाई के लिए मुक़र्रर किए गए हैं, इसलिए उनपर यह पाबन्दी लगा दी गई है कि वे हमेशा-हमेशा उसकी हिदायत पर कारबन्द रहें और अपनी ज़िन्दगी के किसी छोटे-से-छोटे काम में भी उसकी (अल्लाह की) ख़ुशनूदी के ख़िलाफ़ अमल न करें।

यही वजह है कि क़ुरआन मजीद में कुछ ऐसी बातों पर भी ख़ुदा के नबी (सल्ल॰) को तंबीह की गई है जो आम इनसानी ज़िन्दगी में बिलकुल कोई अहमियत ही नहीं रखतीं। मिसाल के तौर पर किसी इनसान का शहद खाना या न खाना, और किसी अन्धे की तरफ़ ध्यान न देना और किसी मामले में उसके दख़ल देने पर त्योरी चढ़ा लेना, या किसी के लिए मग़फ़िरत की दुआ करना, कौन-सा ऐसा अहम वाक़िआ था? मगर अल्लाह ने अपने नबी (सल्ल॰) को ऐसे छोटे-छोटे मामलों में भी अपनी राय या दूसरों की मर्ज़ी पर चलने न दिया। इसी तरह जंग में शरीक होने से किसी को माफ़ कर देना और कुछ क़ैदियों के फ़िदया (प्रतिदान) लेकर छोड़ देना एक अमीर (हाकिम) की ज़िन्दगी में सिर्फ़ एक मामूली वाक़िआ है, मगर नबी की ज़िन्दगी में यही वाक़िआ इतना अहम बन जाता है कि इसपर खुली नुमायाँ वह्य के ज़रिए से तंबीह की जाती है। क्यों? इसलिए कि ख़ुदा के पैग़म्बर की हैसियत आम हाकिमों की-सी नहीं है कि वह अपनी राय पर अमल करने में आज़ाद हो, बल्कि पैग़म्बरी के मंसब पर मुक़र्रर होने की वजह से पैग़म्बर के लिए लाज़िम है कि उसकी राय भी ठीक-ठीक ख़ुदा के मंशा के मुताबिक़ हो। अगर वह अपनी राय में पोशीदा वह्य के इशारे को न समझकर ख़ुदा की मरज़ी के ख़िलाफ़ बाल बराबर भी हरकत करता है तो अल्लाह जली वह्य यानी क़ुरआन की आयत उतारकर उसका सुधार करना ज़रूरी समझता है।

4. अल्लाह ने अपने पैग़म्बर की इस ख़ुसूसियत को हमारे सामने इसलिए बयान किया है कि हमको उसके पैग़म्बर की सच्चाई और ईमानदारी पर

पूरा-पक्का भरोसा हो और हम पूरी मज़बूती के साथ यक़ीन रखें कि नबी का क़ौल और अमल (करनी-कथनी), गुमराही, भटकाव, इच्छा-पैरवी और इनसानी सोच और राय की ग़लतियों से बिलकुल ही महफ़ूज़ है। ज़िन्दगी में उसका क़दम मज़बूती के साथ उस सीधे-सच्चे रास्ते पर जमा हुआ है जो ठीक-ठीक ख़ुदा का बताया हुआ है, उसकी पाक ज़िन्दगी इस्लामी ज़िन्दगी का एक ऐसा मेयारी नमूना है जिसमें किसी कमी की परछाई तक का इमकान नहीं है। और अल्लाह ने ख़ासतौर पर उस मुकम्मल और आला नमूने को इसी लिए बनाया है कि उसके बन्दों में से जो कोई उसका पसन्दीदा और महबूब बन्दा बनना चाहे वह निडर होकर उसी की पैरवी करे। इस मक़सद को छठी और सातवीं आयत में खोल दिया गया है। छठी आयत में बयान किया गया है कि तुम्हारे लिए अल्लाह के पैग़म्बर में एक 'बेहतरीन नमूना' है। और सातवीं आयत में अल्लाह के पैग़म्बर की पैरवी को ख़ुदा का महबूब बन्दा बनने का वाहिद (सिर्फ़ एक) ज़रिआ बताया गया है।

यहाँ फिर हमको बताया गया है कि फ़रमाँबरदारी और पैरवी के लिए कुछ हदें या सीमाएँ नहीं हैं, बल्कि हर मैदान में रसूल की पैरवी ज़रूरी है। अल्लाह के पैग़म्बर की हस्ती को ही अस्ल में बेहतरीन नमूना बताया गया है और हर मैदान में आप ही की पैरवी की हिदायत की गई है। इसका साफ़ मतलब यह है कि जिस क़दर ज़्यादा नबी की पैरवी करोगे, और अपनी ज़िन्दगी में अच्छी सीरत और किरदार का रंग जितना ज़्यादा पैदा करोगे, उतनी ही नज़दीकी तुमको ख़ुदा के दरबार में हासिल होगी, और ख़ुदा उतना ही तुमको प्यार करेगा।

लेकिन अल्लाह के नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी को नमूना ठहरा देने और आप (सल्ल०) की पैरवी का हुक्म देने से यह मुराद नहीं है कि ज़िन्दगी के सारे ही मामलों में आप (सल्ल०) ने जो कुछ किया है और जिस तरह किया है सब इनसान ठीक-ठीक वही काम उसी तरह करें, और अपनी ज़िन्दगी में पैग़म्बर (सल्ल०) की पाक ज़िन्दगी की ऐसी ही नक़ल उतारें कि अस्ल और नक़्ल में कोई फ़र्क़ न रहे। यह मक़सद न क़ुरआन का है, न हो सकता है। अस्ल में यह एक आम और मुख़्तसर हुक्म है जिसपर अमल करने की सही

सूरत हमको ख़ुद नबी (सल्ल॰) की तालीम और सहाबा (रज़ि॰) के तरीक़े से मालूम हो जाती है। यहाँ इसकी तफ़सील का मौक़ा नहीं। मुख़्तसर (संक्षेप में) बयान करता हूँ कि जो मामले फ़र्ज़, वाजिब और इस्लाम के अरकान (स्तम्भ) की हैसियत रखते हैं उनमें तो नबी (सल्ल॰) के हुक्म की फ़रमाँबरदारी और आप (सल्ल॰) के अमल की पैरवी बिलकुल उसी तरह करना ज़रूरी है, मिसाल के तौर पर नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात और पाकी व सफ़ाई वग़ैरा के मसले के सिलसिले में जो कुछ आप (सल्ल॰) ने हुक्म दिया है और जिस तरह ख़ुद अमल करके बताया है उसकी ठीक-ठीक पैरवी लाज़िम है। रहे वे मामले जो इस्लामी ज़िन्दगी की आम हिदायतों से ताल्लुक़ रखते हैं। मिसाल के तौर पर तमद्दुनी (सांस्कृतिक), मआशी और सियासी मामले और सामाजिक रहन-सहन के छोटे-छोटे मामले, तो इनमें से कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिनका नबी (सल्ल॰) ने हुक्म दिया है या जिनसे बचने की ताकीद की है, कुछ ऐसी हैं जिनको पेशे-नज़र रखकर हम यह मालूम कर सकते हैं कि अमल के मुख़्तलिफ़ तरीक़ों में से कौन-सा तरीक़ा इस्लामी रूह से मेल खाता है। तो फ़िर अगर कोई आदमी नेक नीयती के साथ प्यारे नबी (सल्ल॰) की पैरवी करना चाहे और इसी मक़सद से आप (सल्ल॰) की सुन्नत का मुताला (अध्ययन) करे तो उसके लिए यह मालूम करना कुछ भी मुश्किल नहीं कि किन मामलों में आप (सल्ल॰) की पैरवी बिलकुल ठीक-ठीक उसी तरह होनी चाहिए, किन मामलों में आप (सल्ल॰) की सुन्नत से अख़लाक़, हिकमत, भलाई और सुधार के आम उसूल लिए जाने चाहिएँ। लेकिन जिन लोगों की तबिअत और मिज़ाज में इख़्तिलाफ़ व टकराव करना है वे इसमें तरह-तरह की हुज्जतें निकालते हैं। कहते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) अरबी बोलते थे तो क्या हम भी अरबी बोलें? आप (सल्ल॰) ने अरब औरतों से शादियाँ की हैं तो क्या हम भी अरबों ही में शादियाँ करें? आप (सल्ल॰) एक ख़ास क़िस्म का लिबास पहना करते थे, तो क्या हम भी उसी तरह का लिबास पहनें? आप (सल्ल॰) जिस तरह का खाना खाते थे, क्या हम भी वही खाना खाएँ? नबी (सल्ल॰) के सामाजिक रहन-सहन का एक ख़ास तरीक़ा था तो क्या हम भी ठीक-ठीक वैसा ही सामाजिक रहन-सहन अपनाएँ? काश

ये लोग ग़ौर करते कि अस्ल चीज़ वह ज़बान नहीं है जो आप (सल्ल॰) बोलते थे, बल्कि वे अख़लाक़ी हदें हैं जिनकी पाबन्दी का प्यारे नबी (सल्ल॰) ने हमेशा बोल-चाल में ध्यान रखा है। अस्ल चीज़ यह नहीं है कि शादी अरब औरतों से की जाए या ग़ैर-अरब से, बल्कि यह है कि जिस औरत से भी की जाए उसके साथ हमारा मामला कैसा हो, उसके हक़ों को हम किस तरह अदा करें, और अपने जाइज़ शरई इख़्तियारों को उसपर किस तरह इस्तेमाल करें। इस मामले में अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) का जो बरताव अपनी बीवियों के साथ था उससे बेहतर नमूना एक मुसलमान की घरेलू ज़िन्दगी के लिए और कौन-सा हो सकता है? फिर यह किसने कहा कि आप (सल्ल॰) जिस तरह का लिबास पहनते थे वही शरई लिबास है? और जो खाना आप (सल्ल॰) खाते थे ठीक बिलकुल वही खाना हर मुसलमान को खाना चाहिए? अस्ल में पैरवी के क़ाबिल जो चीज़ है वह तो परहेज़गारी और पाकीज़गी की वे हदे हैं जिसका आप अपने खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने में ख़याल रखते थे। इन्हीं हदों से हमको मालूम हो सकता है कि रहबानियत (संन्यास) और नफ़्सपरस्ती के बीच जिस सीधे और सन्तुलित रवैये का हमको क़ुरआन मजीद में एक संक्षेप में सबक़ दिया गया है उसपर हम किस तरह अमल करें कि न तो पाक चीज़ों से बेजा तौर पर दूर हो जाएँ और न बेजा तौर पर ख़र्च हो। यही हाल प्यारे नबी (सल्ल॰) की प्राइवेट और पब्लिक ज़िन्दगी के दूसरे सभी मामलों का भी है। वह पाक ज़िन्दगी पूरी-की-पूरी एक सच्चे और ख़ुदातरस मुसलमान की ज़िन्दगी का मेयारी नमूना थी। हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने बिलकुल सच फ़रमाया, "आप (सल्ल॰) की ज़िन्दगी क़ुरआन का नमूना थी।" अगर तुमको मालूम करना हो कि क़ुरआन की तालीम और स्प्रिट के मुताबिक़ एक मोमिन इनसान को दुनिया में किस तरह ज़िन्दगी बसर करनी चाहिए, तो अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की ज़िन्दगी को देख लो। जो इस्लाम ख़ुदा की किताब के अन्दर मुख़्तसर में है वही ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) की ज़ात में तुमको तफ़सील से नज़र आएगा।

अल्लाह का शुक्र है कि हमारे दोस्त चौधरी ग़ुलाम अहमद साहब उन लोगों के जैसे ख़याल नहीं रखते, लेकिन कुछ हदीसों से उनको शुब्हा हो

गया है कि "नबी (सल्ल॰) हर पल और हर हाल में पैग़म्बर नहीं होते थे और आप (सल्ल॰) की हर बात और हर काम पैग़म्बर की हैसियत से नहीं होता था।" यह ग़लतफ़हमी जिन हदीसों से पैदा होती है वे अस्ल में एक दूसरी हक़ीक़त की तरफ़ इशारा करती हैं। सच्ची बात यह है कि नबी (सल्ल॰) हर पल और हर हाल में ख़ुदा के पैग़म्बर ही थे, और यह पैग़म्बरी की शान ही थी कि आप (सल्ल॰) हमेशा उस मक़सद को सामने रखते थे जिसके लिए आप (सल्ल॰) को भेजा गया था। आप (सल्ल॰) को भेजने का मक़सद यह तो न था कि लोगों से राय और अमल की आज़ादी बिलकुल ही छीन ली जाए और उनकी अक़्ल और फ़िक्र को बेकार कर दें। न आप (सल्ल॰) दुनिया को खेती-बाड़ी, उद्योग-धन्धा और कारीगरी सिखाने आए थे। न आप (सल्ल॰) को इसलिए भेजा गया था कि लोगों के कारोबार और उनके निजी मामलों में उनकी रहनुमाई फ़रमाएँ। नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी का मक़सद सिर्फ़ एक था और वह इस्लाम को अक़ीदे की हैसियत से दिलों में बिठाना और अमल की हैसियत से लोगों की ज़िन्दगी और सोसाइटी के निज़ाम (सामाजिक व्यवस्था) में लागू कर देना था। इस मक़सद के सिवा दूसरी किसी चीज़ की तरफ़ नबी (सल्ल॰) ने कभी ध्यान नहीं दिया। और अगर कभी किसी मौक़े पर कुछ कहा भी तो साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम अपनी राय और अमल में आज़ाद हो, जिस तरह चाहो करो "तुम दुनिया के मामले में मुझसे ज़्यादा जानते हो" (हदीस : मुस्लिम-2363) हालाँकि सहाबा (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) की हर बात को पैग़म्बर की बात समझकर दिल व जान से उसकी पैरवी करने पर आमादा थे, और आप (सल्ल॰) को ही सिर्फ़ पैरवी के क़ाबिल समझते थे, और इसी लिए जब कभी प्यारे नबी (सल्ल॰) किसी दुनियावी मसले में भी कुछ कहते तो सहाबा (रज़ि॰) को शुबहा होता था कि शायद यह पैग़म्बरी का हुक्म हो, लेकिन कभी ऐसा न हुआ कि आप (सल्ल॰) ने किसी ऐसे मसले में, जो आप (सल्ल॰) के भेजे जाने के मक़सद से ताल्लुक़ न रखता था, सहाबा (रज़ि॰) को कोई हुक्म दिया हो और उन्हें फ़रमाँबरदारी पर मजबूर किया हो। तेईस (23) साल की मुद्दत में एक पल के लिए भी अपने मिशन से ग़ाफ़िल न होना, और हर वक़्त इस बारीक फ़र्क़

को सामने रखना कि कौन-सा काम इस मिशन से ताल्लुक़ रखता है, और कौन-सा नहीं रखता, और अपनी पैरवी करनेवालों पर पूरा-पूरा इख़्तियार (प्रभुत्व) रखने के बावजूद कभी उनको किसी ग़ैर-मुताल्लिक़ मामले में हुक्म न देना ख़ुद इस बात पर गवाह है कि पैग़म्बरी की शान किसी वक़्त भी नबी (सल्ल॰) से अलग न होती थी। लेकिन यह ख़याल करना सही न होगा कि दुनियावी मामलों में जो कुछ नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया वह ख़ुदा की वह्य से न था। जबकि आप (सल्ल॰) की ऐसी कही हुई बातें आपके हुक्म नहीं हैं, न आपने उनको हुक्म के अन्दाज़ में फ़रमाया, और न किसी ने उनको हुक्म समझा, लेकिन फिर भी जो बात आप (सल्ल॰) की मुबारक ज़बान से निकली वह सरासर हक़ थी, और ग़लती का उसमें अन्देशा तक न था। मिसाल के तौर पर तिब्बे-नबवी के विषय में जो कुछ आप (सल्ल॰) से साबित है वह ऐसी-ऐसी हकीमाना बातों से भरा-पड़ा है जिनको देखकर हैरत होती है कि अरब का एक उम्मी (अनपढ़) जो हकीम, डॉक्टर न था, जिसने कभी तिब्ब (आयुर्वेद) के फ़न की तहक़ीक़ (खोज) न की थी, वह किस तरह इस फ़न की हक़ीक़तों तक पहुँचा, जो सदियों के तजरिबों के बाद अब खुलकर सामने आ रही हैं। इस तरह की सैकड़ों मिसालें हमको प्यारे नबी (सल्ल॰) की हकीमाना बातों में मिलती हैं। जबकि ये बातें आपके कहने के मुताबिक़ पैग़म्बरी की तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) से ताल्लुक़ नहीं रखतीं, लेकिन अल्लाह अपने पैग़म्बरों की फ़ितरत में जो ग़ैर-मामूली कुव्वतें पैदा फ़रमाता है वे सिर्फ़ पैग़म्बरी की तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) के काम ही नहीं आतीं, बल्कि हर मामले में अपनी ख़ुसूसी शान दिखाकर रहती हैं, लोहारगिरी और ज़िरहसाज़ी का तबलीग़े-रिसालत से क्या ताल्लुक़ हो सकता है? लेकिन हज़रत दाऊद (अलैहि॰) इसमें ग़ैर-मामूली कमाल दिखाते हैं और ख़ुदा ख़ुद फ़रमाता है कि यह फ़न हमने उनको सिखाया था—

> "हमने उसको तुम्हारे फ़ायदे के लिए ज़िरह बनाने की कला सिखा दी थी ताकि तुमको एक-दूसरे की मार से बचाए।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-21 अंबिया, आयत-80)

परिन्दों की बोलियाँ जानने से तबलीग़े-रिसालत को क्या वास्ता? लेकिन

हज़रत सुलैमान (अलैहि०) इसमें बड़ा कमाल दिखलाते हैं और ख़ुद कहते हैं कि "हमें परिन्दों की बोलियाँ सिखाई गई हैं।" (क़ुरआन, सूरा-27 नम्ल, आयत-16) बढ़इगिरी और कश्ती बनाने की कला तबलीग़े-रिसालत का कौन-सा शोबा (विभाग) है? मगर अल्लाह तआला हज़रत नूह (अलैहि०) से यह नहीं कहता कि एक मज़बूत-सी कश्ती बनवा लो, बल्कि फ़रमाता है—

"हमारी निगरानी में हमारी वह्य के मुताबिक़ एक कश्ती बनानी शुरू कर दो।" (क़ुरआन, सूरा-11 हूद, आयत-37)

इसलिए पैग़म्बरों के बारे में यह गुमान करना सही नहीं कि उनपर सिर्फ़ वही मामले वह्य किए गए थे जो सीधे-सीधे पैग़म्बरी की तबलीग़ से ताल्लुक़ रखते हैं। हक़ीक़त में उनकी सारी ज़िन्दगी अल्लाह की हिदायत के ताबे (अधीन) थी। हाँ अगर फ़र्क़ है तो यह कि उनकी ज़िन्दगी का एक विभाग ऐसा है जिसमें उनके क़दम-ब-क़दम चलना मुसलमान होने के लिए लाज़िमी शर्त है, और एक विभाग ऐसा है जिसमें उनकी पैरवी हर मुसलमान पर फ़र्ज़ नहीं। लेकिन जो आदमी अल्लाह का महबूब और मक़बूल बन्दा बनना चाहता हो और ख़ुदा के दरबार में क़रीब होना चाहता हो, उसके लिए बग़ैर इसके चारा नहीं कि ठीक-ठीक नबी की सुन्नत पर चले, यहाँ तक कि अगर एक बाल-बराबर भी उस लाइन से हटेगा तो नज़दीकी और महबूबियत में उसी हटने की हद तक कसर रह जाएगी। इसलिए कि महबूबियत के लिए पैग़म्बर की पैरवी करने के अलावा कोई और रास्ता ही नहीं—

"मेरी पैरवी इख़्तियार करो अल्लाह तुमसे मुहब्बत करेगा।"
(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-31)

5. इस बहस के बाद यह बात ख़ुद-ब-ख़ुद साफ़ हो जाती है कि नबी व पैग़म्बर की रहनुमाई और दूसरे रहनुमाओं की रहनुमाई में क्या फ़र्क़ है और नबी के फ़ैसले और दूसरे जजों के फ़ैसले में कितना बड़ा फ़र्क़ है। फिर भी मैंने तीन आयतें आख़िर में ऐसी नक़्ल की हैं जिनसे यह फ़र्क़ बिलकुल साफ़ हो जाता है। इन आयतों से साबित होता है कि ख़ुदा के पैग़म्बर के हुक्म पर सिर झुका देना और आप (सल्ल०) के फ़ैसले को मान लेना ईमान के लिए ज़रूरी शर्त है, जो उससे इनकार करे वह ईमानवाला ही नहीं। क्या

यह बात किसी दूसरे अमीर (रहनुमा) या जज को हासिल है? अगर नहीं तो यह कहना किस क़दर ग़लत है कि "अल्लाह और पैग़म्बर के अलफ़ाज़ क़ुरआन में जहाँ-जहाँ साथ-साथ आए हैं, उनसे मुराद इमारत (नेतृत्व) है।" मुझे मौलाना जैराजपुरी के इसी क़ौल पर एतिराज़ है और मैं इसको क़ुरआन मजीद की तालीम के बिलकुल ही ख़िलाफ़ समझता हूँ। रहा वह मसला जो चौधरी साहब ने पेश फ़रमाया है तो वह एक बिलकुल अलग मसला है और उसमें मुझे उनसे बिलकुल इत्तिफ़ाक़ है। मैं भी मानता हूँ कि ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल०) के बाद उलिल-अम्र (हाकिम) की पैरवी ही वाजिब है। और हाकिम इस्लामी हुकूमत के वे सारी ज़िम्मेदारियाँ अंजाम देंगे जो प्यारे नबी (सल्ल०) अपनी पाक ज़िन्दगी में अंजाम देते थे, और मामलों में हाकिम का फ़ैसला ही आख़िरी फ़ैसला होगा। यहाँ तक कि अगर कोई आदमी अपनी समझ के मुताबिक़ उनके फ़ैसले को ख़ुदा और पैग़म्बर के हुक्म के ख़िलाफ़ भी समझता हो, तब भी एक ख़ास हद तक उसके लिए लाज़िम होगा कि अपनी राय पर क़ायम रहते हुए उनके फ़ैसले को तसलीम करे। लेकिन इसके यह मानी कभी नहीं हो सकते कि इमारत बिलकुल ठीक-ठीक वही चीज़ है जिसको क़ुरआन में 'अल्लाह और रसूल' कहा गया है और इमारत के अहकाम (आदेश) हू-ब-हू वही हैं जो अल्लाह और पैग़म्बर के अहकाम हैं। अगर ऐसा हो तो हाकिमों के बिगड़ जाने और हुकूमत के ज़िम्मेदारों के किताब और सुन्नत से हट जाने की सूरत में मुसलमानों के लिए कोई चारा उनकी पैरवी करने के सिवा, और हलाकत के रास्तों में उनकी पैरवी करने के सिवा बाक़ी न रहेगा। ऐसी सूरत में अगर कोई ख़ुदा का बन्दा उठे और अल्लाह और पैग़म्बर की तरफ़ पलट आने की ताकीद करे तो मौलाना असलम के फ़तवे के मुताबिक़ तो हाकिम उसको बाग़ी ठहराकर क़त्ल कर देने के बिलकुल हक़दार मानें जाएँगे और उनको यह कहने का हक़ होगा कि 'अल्लाह और रसूल' तो हम ही हैं। दूसरा कौन है, जिसकी तरफ़ तू हमको फेरना चाहता है?

(तर्जुमानुल-क़ुरआन, रबीउस-सानी, 1335 हि०/जुलाई सन् 1935 ई०)

●●